

Vol. 6, No. 3 & 4
July - December, 2018

ISSN : 2321-5607



SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES

A Quarterly Refereed Journal

**CITE THIS "VOLUME AS 6, NO. 3 & 4
SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES"
(July to December, 2018)**

@Publishers

The "Socio-Economic Perspectives" Journal is published quarterly. Contributions to the Journal are invited in the form of articles, notes and case comments. Contributions to the Journal should be sent as an attachment to this mail id: **socioecopj2015 @gmail.com**

Akhil Bhartiya Samajik Vikas Evam Kalyan Samiti shall be the sole copyright owner of all the published material. Apart from fair dealing for the purposes of research, private study or criticism, none of the part of this Journal may be used in any form whatsoever without prior written permission from the publisher.

The editors, publishers and printers shall not be responsible, in any case, for the views/research papers/articles/book reviews given by the contributors. Contributors are completely responsible for any type of plagiarism or errors, if found.

Published by

Prof. A.N. Singh
Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
An Official publication of
Akhil Bhartiya Samajik Arthik Vikas Samiti
1/135, Viram Khand, Gomti Nagar,
Lucknow (U.P.)- 226010, India
e-mail: socioecopj2015 @gmail.com

Printed By

Shivam Printers
C-165, Nirala Nagar, Lucknow.

SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES
(A QUARTERLY REFEREED JOURNAL)

Editorial Board

Patron

Prof. R.P. Singh

Former Vice-Chancellor, University of Lucknow, Lucknow

Editor-in-Chief

Prof. A.N. Singh

Managing Editor

Dr. Vivek Kumar Singh

Executive Editor

Dr. Muhammad Nayim

Dr. Ashish Ranjan

Assistant Executive Editors

Dr. Archana Singh

Dr. Chet Narayan Patel

Dr. Leena Singh

Dr. Shikha Singh

Dr. Santosh Kumar

SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES

(A QUARTERLY REFEREED JOURNAL)

Article Review & Advisory Board

Prof. Balraj Chauhan

Former Vice Chancellor,
Ram Manohar Lohia,
National Law University, Lucknow

Prof. A.K. Singh

Vice-Chancellor,
Shri Ram Swaroop Memorial University,
Lucknow.

Prof. A.B. Singh

Department of Sociology &
Social Work,
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. R.B.S. Verma

Ex-Head,
Department of Social Work,
University of Lucknow

Prof. Sanjay Bhatt

Ex-Head, School of Social Work
Delhi University, Delhi

Prof. A.N. Singh

Ex-Dean, Faculty of Social Work,
M.G. Kashi Vidyapeeth, Varanasi

Prof D.K. Singh

Head,
Department of Social Work
University of Lucknow

Dr. Shailja Singh

Head,
Department of Sociology & Social Work
D.S.M.N.R. University, Lucknow

Prof. Ankur Saxena

Faculty of Social Work
The Maharaja Sayajirao
University, Baroda, Gujrat

Dr. Mridul Srivastava

Assistant Registrar,
R.M.L. National Law University,
Lucknow

Prof. Pratibha J. Mishra

Head, Department of Social Work
Guru Ghasidas Vishwavidyalaya,
Bilaspur

Dr. Durgesh Kumar Srivastava

Assistant Professor,
Department of AIH & Archaeology,
University of Lucknow

Dr. P.N. Pathak

Administrative Officer,
University of Lucknow, Lucknow

SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES
(A QUARTERLY REFEREED JOURNAL)

Volume 6, No. 3 & 4 (July to December, 2018)

Membership Fees

Membership	Individual	Institutional	Foreign
Annual	Rs. 1200/-	Rs. 2500/-	\$100
Life Membership (Up to 10 Years)	Rs. 5000/-	Rs. 10,000/-	\$200

- * The draft or Cheque for member should be sent in favour of:

The Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
1/135, Viram Khand, Gomti Nagar,
Lucknow (U.P.)- 226010

- ** The membership fees can also be deposited directly or through NEFT favour of :

The Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
Bank: Indian Overseas Bank
Branch: BSIP (1873), University Road, Lucknow- 226007
SB Account Number: 187301000003252
IFSC: IOBA0001873
MICR: 226020021

Editorial correspondence should be addressed to:

Prof. A.N. Singh
Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
1/135, Viram Khand, Gomti Nagar,
Lucknow (U.P.)- 226010, India
e-mail: socioecopj2015@gmail.com

CONTENT

S. No.	Title of the Paper	Author	Page No.
1.	बढ़ते शिक्षित बेरोजगारों का स्वरोजगार में भविष्य : एक विवेचना	डा० संजय अग्रवाल	1
2.	बीसवीं सदी की हिन्दी समीक्षा पद्धतियों का समीक्षात्मक विश्लेषण	डा० कृष्णकान्त चन्द्रा	11
3.	ग्रामीण अधोसंरचना विकास (पुनर्निर्माण) और पंचायती राज व्यवस्था (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में)	डॉ. कौशलेन्द्र गुप्ता	20
4.	समकालीन आलोचना और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	डॉ. शार्दूल विक्रम सिंह	25
5.	संत कवि – सुंदरदास और उनकी कविता	मनोज कुमार शुक्ल	33
6.	बुद्ध का नीतिशास्त्र	डॉ० ज्योति वर्मा	38
7.	भारत में बौद्ध धर्म के विकास में डॉ० आंबेडकर की भूमिका	डॉ० बृजेन्द्र सिंह बौद्ध	47
8.	कृषि के विकास में जैविक खेती की उपयोगिता	डॉ० सुनीत कुमार सिंह	59
9.	Critical Examination Of A Socio-Cultural Effect Of Serials On Indian TV Channels	Dr. Kaushal Tripathi Dr. Muhammad Nayim	67

(July - December, 2018)

S. No.	Title of the Paper	Author	Page No.
10.	Cause and Effect Relationship between the Individual Preferences and What Media Serve to the Individuals	Dr. Kaushal Tripathi	79
11.	Ancient to GST Era Journey of Indian Economy: An Eco-Political Approach	Dr. Lal Mrigendra Singh Baghel Dr. Anupama Srivastava	88
12.	Lasting Impressions	Dr. Ram Shankar Yadav	101
13.	Entrepreneurship Development through Forest Based MSMES	Dr. Neetu Singh Dr. Lal Mrigendra Singh Baghel	106
14.	Keki Daruwalla : A Modern Indian English poet	Dr. Faraz Alam Dr. Shipra Gupta Vashishtha	117
15.	Controlling Aggression in Sports	Dr. Santosh Kumar Gaur	122
16.	Modern Science and Spiritual Traditions	Dr. Anil Kumar Srivastava	128

बढ़ते शिक्षित बेरोजगारों का स्वरोजगार में भविष्य : एक विवेचना

डॉ. संजय अग्रवाल*

सारांश

अधिकतर भारतीयों को आर्थिक वृद्धि से तभी फायदा हो सकता है, जब उन्हें काम के बढ़िया हालात और वाजिब वेतन वाली नौकरी मिले। सापेक्षिक रूप से उच्च आर्थिक वृद्धि के कई दशक भी भारतीयों के बड़े हिस्से को अच्छी गुणवत्ता वाले रोजगार दे पाने में नाकाम रहे हैं। इस नाकामी के दुष्प्रभाव, आय की बढ़ती असमानता, सामाजिक असंतोष और बेरोजगार युवाओं के हिंसा की घटनाओं में लिप्त होने, देश के दूसरे हिस्सों से आने वाले प्रवासियों और स्थानीय लोगों के बीच तनाव को राजनीतिक रंग देने की कोशिश और कम गुणवत्ता वाले रोजगार में फंसे लाखों लोगों के रहन-सहन के हालात में गिरावट के रूप में सामने आये हैं।

कई वर्षों तक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण भारत अपेक्षित गति से विकास कर पाने में सक्षम नहीं हो पा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप विश्वपटल पर स्वयं को आत्मनिर्भर और सशक्त रूप से स्थापित करने के लिये हमारी सरकारों को कई बड़े इम्तिहानों और बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था, आजादी के इतने वर्षों बाद भी पर्याप्त रूप से चरमरायी हुई ही है। भले ही हमारी सरकारें लोगों के जीवन स्तर को सुधारने और उन्हें उपयुक्त रोजगार मुहैया कराने का दम भरती हो, लेकिन जमीनी हकीकत यही है कि हमारी अधिकांश जनसंख्या भूखे पेट सोने और शिक्षा विहीन रहने के लिये विवश है। बेरोजगारी का यह आंकड़ा बढ़ते-बढ़ते इतना विकराल रूप धारण कर चुका है कि इसका सामना करना हमारे लिये एक बड़ी चुनौती है।

यद्यपि नब्बे के शुरुआती दशक में निजीकरण और उदारीकरण जैसी आर्थिक नीतियों के भारत में पदार्पण करने के साथ ही भारत की

* एसोसिएट प्रोफेसर, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पोस्ट-ग्रेजुएट कालेज, बाराबंकी।

रोजगार स्थिति को थोड़ा समर्थन मिला। इन्हीं नीतियों के कारण कई ऐसे उद्योगों का विकास हुआ जिनके कारण बेरोजगारी से सम्बन्धित आंकड़ों में कमी देखी गयी। आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी, जिन्होंने हमारे युवाओं के जीवन-स्तर को सुधारने में काफी सहायता की, भारत में अपने पाँव पसारने में सफल रहीं, लेकिन यह विकास केवल शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित रहा है। असली भारत जो गाँवों में वास करता है, के विकास को उपेक्षित ही रहने दिया गया।

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है, जनसंख्या जितनी तेजी से बढ़ रही है, व्यक्तियों का आर्थिक स्तर और रोजगार के अवसर उतनी ही तेज गति से गिरते जा रहे हैं। रोजगार की तलाश में दिन-रात एक कर रहे व्यक्तियों की संख्या, साधनों और उपलब्ध अवसरों की संख्या से बहुत अधिक है। यही कारण है कि आज भी अधिकांश युवा बेरोजगारी में ही जीवन व्यतीत करने के लिये विवश है।

कोई भी व्यक्ति पैसा कमाने और अपने जीवन-यापन के लिये कार्य करता है। यह कार्य दो तरह का होता है—एक है दूसरों के लिये कार्य करना जिसे हम रोजगार कहते हैं। इसके उदाहरण हैं—सरकारी नौकरियाँ, प्राइवेट नौकरियाँ आदि, जो आप दूसरों के अंदर में रह कर करते हैं, जबकि स्वरोजगार में व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति या संस्था के अंदर में कार्य न करते हुए अपना खुद का कार्य शुरू करता है। इस प्रकार अपनी स्वयं की सोच एवं विचारों के माध्यम से खुद का उद्योग, धंधा या बिजनेस स्थापित करना स्वरोजगार है। यह एक हाई रिस्क एवं हाई रिटर्न का खेल है। इसमें आप महीने के लाखों करोड़ों भी कमा सकते हैं, अथवा आय शून्य भी हो सकती है। स्वरोजगार के माध्यम से आप दूसरों को रोजगार भी प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार स्वरोजगार में अपने स्किल, अपने टैलेंट को बेचकर या सेवा देकर आय अर्जित की जाती है।

बढ़ती जनसंख्या और नौकरियों की कमी व्यक्ति को स्वरोजगार के लिये प्रेरित करती रही है। सरकार भी अनेक प्रकार से ऐसे उद्यमियों की मदद करती है। उन्हें वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराती है। स्वरोजगार

में व्यक्ति अपने टैलेंट के आधार पर अपनी रुचि आधारित कार्य करता है, जिससे उसे अधिक खुशी महसूस होती है। वह ऊर्जावान रहता है। इससे उसकी सफलता के अवसर भी बढ़ जाते हैं। इसमें पैसा कमाने की कोई लिमिट भी नहीं होती। अतः नौकरी से कई गुना पैसा कमाने की सम्भावना होती है।

अगर सभी व्यक्ति नौकरियाँ ही करते तो दुनिया भर में बड़े-बड़े उद्यम कैसे स्थापित होते। वास्तव में अनेक लोग दूसरों से हटकर कुछ करना चाहते हैं। इसके लिये वे जोखिम भी उठाते हैं, परिश्रम भी करते हैं। उनकी यही चाहत स्वरोजगार की नींव का पत्थर होती है, जो लाखों लोगों के रोजगार का माध्यम भी बनती है और बहुतों को स्वरोजगार के लिये प्रेरित भी करती है।

यद्यपि इसमें जोखिम भी बहुत है, क्योंकि नये कार्यों में आप सफल भी हो सकते हैं, असफल भी। अतः व्यक्ति में आत्मविश्वास और धैर्य होना आवश्यक है, क्योंकि व्यक्ति को सीखने, अपने स्किल को विकसित करने और आइडियाज़ को धरातल पर उतारने में थोड़ा वक्त तो लगता ही है, यह अवश्य है कि स्वरोजगार जितना जोखिम भरा होगा, सफल होने पर उतना ही फायदेमंद भी होगा।

पिछले वर्षों में भारत की विकास दर करीब 7.6 प्रतिशत रही है, लेकिन देहाती क्षेत्रों और अर्थव्यवस्था के विभिन्न पिछड़े इलाकों में आय बहुत धीमी गति से बढ़ी है। विशेषज्ञों के अनुसार हमारा विकास गरीबों का समर्थन करने वाला विकास नहीं था, जिससे विषमतायें तीव्र गति से बढ़ी। आर्थिक विकास में तेजी से आई कमी का कारण वैश्विक आर्थिक संकट बताया जा रहा है, लेकिन विकास दर को बनाये रखने में विफलता की वजह प्रतिभाओं का इस्तेमाल न करना और कुशल कारीगरों की कमी है। भारत मुख्य रूप से गाँवों में रहने वाली अपनी आबादी की क्षमताओं का इस्तेमाल करने और उन्हें शिक्षा और स्वास्थ्य सेवायें देने में नाकाम रहा है।

यद्यपि पिछले वर्षों में ढेर सारे गैर सरकारी स्कूल, कालेज खुले पर राजनैतिक इच्छा के अभाव और भ्रष्टाचार की वजह से स्तरीय शिक्षा को

प्रोत्साहन नहीं मिला है। देश के कुछ नामी संस्थानों की यद्यपि विश्वभर में पहचान है, लेकिन वे भारत की वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हैं। शोध और विकास के क्षेत्र में भी भारत की पहुँच सीमित है। वह कुल वैश्विक खर्च का सिर्फ 2 प्रतिशत ही खर्च करता है।

आधुनिकता के कारण एक ओर परम्परागत संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और नौकरी के लिये युवा लोगों ने बड़े शहरों का रुख किया है, दूसरी ओर नये रोजगार विकसित करने और गरीबी रोकने में सरकार की विफलता के कारण देहातों से लोगों का पलायन शहरों की ओर हो रहा है, जिससे शहरों की ढांचागत संरचना चरमरा गई है। असफलताओं के कारण युवा वर्ग में सामाजिक तनाव और कुंठा के कारण हिंसक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं।

इतना ही नहीं, विकास और औद्योगीकरण के नाम पर हमारी कल्याणकारी सरकारें बहुराष्ट्रीय कम्पनियों व बड़े पूँजीपतियों के लिए गरीब खेतिहर किसानों से बहुत थोड़े मूल्य पर भूमि का अधिग्रहण बंजर भूमि के नाम पर कर लेती हैं, जबकि वास्तविकता में वह बंजर भूमि होती ही नहीं है। वे यह भी आश्वासन देती हैं कि उद्योग की स्थापना के बाद किसान परिवार के सदस्य को उसी उद्योग में रोजगार दिया जायेगा। परन्तु उसे मुआवजे की राशि के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। एक समय बाद गरीबी और तंगहाली से वह आत्महत्या तक करने को विवश हो जाता है।

बेरोजगारी से जुड़ा मसला केवल बढ़ती जनसंख्या तक सीमित नहीं है। हमारी शासन व्यवस्था और उसमें व्याप्त कमियाँ भी उत्तरदायी हैं। भ्रष्टाचार एक ऐसी ही सामाजिक और नैतिक बुराई है। पैसे के एवज में अवसरों की दलाली करना या भाई-भतीजावाद के फेर में पड़ते हुए अपने संबंधियों को अवसर उपलब्ध कराना नयी बात नहीं है।

वर्तमान समय में भारत का समग्र राष्ट्रीय रोजगार नीति की जरूरत है, जो रोजगार के क्षेत्रों के अलावा विभिन्न सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर नीतिगत इनपुट प्रदान कर सकती है। इस तरह की नीति सामाजिक उत्पादक जीवन के लिये काम करते हुए युवाओं के सुरक्षित, स्वस्थ, सुखद

और टिकाऊ विकास के लिए देश की आकांक्षाओं को परिभाषित करें। यह नीति युवाओं को अपनी जिंदगी बनाने के लिए सशक्तीकरण का एक ढाँचा प्रदान करने वाली होनी चाहिए, जिससे वे अपने कार्यों की जिम्मेदारी ले सकें और जीवन की अनिश्चितताओं का सामना करने के लिए मजबूत बन सकें।

हमें अपने रोजगार दफ्तरों को भी सुधारने, उन्हें जॉब सेन्टर में बदलने की जरूरत है। भले ही इन्हें सरकार द्वारा चलाया जाय या निजी हाथों में दे दिया जाए।

पर्यटन उद्योग को परवान चढ़ाने के लिये विभिन्न प्रदेशों की सरकारें विभिन्न उपाय अपना सकती हैं। इससे रूरल टूरिज्म को भी बढ़ावा मिलेगा, और ग्रामीण पर्यटन से जुड़े युवा-युवती न सिर्फ रोजगार पायेंगे बल्कि एक जिला एक उत्पाद को भी बढ़ावा देंगे। इससे स्थानीय उत्पाद को प्रदेश बल्कि देश भर में मान्यता मिल सकती है। हमारे देश के हर प्रदेश में, प्रदेश के हर जिले में, और जिले के अनेक गाँवों में कोई खास कला, हुनर अथवा खास उत्पाद हो सकता है, जिसके कद्रदान देश-विदेश में हों। तब उत्पाद भी बिकेगा और देश-विदेश के लोगों के आगमन से विलेज टूरिज्म को भी प्रोत्साहन मिलेगा। एग्री टूरिज्म के जरिये स्वरोजगार के दायरे को और भी विस्तार दिया जा सकता है। इससे स्थानीय स्तर पर लोगों को रोजगार भी मिलेगा। साथ ही अलग-अलग स्थानों से आये लोग एक दूसरे के क्षेत्रों की संस्कृति से वाकिफ होंगे। आकर्षित होने पर वे वहाँ घूमने हेतु जाना भी चाहेंगे।

देश की अर्थव्यवस्था की दीर्घकालीन रोजगार नीतियों में भारत में निवेश की दर कैसी है, यह महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि दीर्घकालीन विकास निवेश द्वारा ही सम्भव है। इसमें राजनीति की महती भूमिका होती है, क्योंकि लोगों में अगर आत्मविश्वास होगा, सहकारिता की भावना होगी, भरोसा होगा तो लोग अधिक निवेश करेंगे। वे अपना भविष्य भी सुरक्षित मानेंगे। विपरीत परिस्थिति में वे अपने धन को अपने पास रखना चाहेंगे।

दीर्घकालीन अर्थव्यवस्था का बेहतरी के लिये नैतिक मूल्य अत्यन्त

महत्वपूर्ण होते हैं। नैतिकता, सदाचार और दीर्घकालिक विकास का आपस में गहरा सम्बन्ध है। सरकार को भी ईमानदारी से अपनी छवि सुधारनी होगी। अपने शासन-प्रशासन को एवं अनुशासन के साथ चलाना होगा, तभी देश और देशवासी भी नियम-कानून और संविधान से जुड़ाव महसूस करेंगे।

सरकार को बेरोजगारी के समाधान के लिए कौशल वृद्धि हेतु विशेष प्रयास करने होंगे। युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रेरित और प्रशिक्षित करना होगा। हमारे देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली अव्यवहारिक और सैद्धान्तिक है, जो युवाओं को जीविका के लिए तैयार करने में सक्षम नहीं है। शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए सरकार की पकड़ मजबूत नहीं है और विश्वविद्यालय भी सही दिशा तय करने में भ्रमित प्रतीत होते हैं। परिणामस्वरूप सारी की सारी घिसी-पिटी शिक्षा कॉलेजों के हवाले कर दी जाती है, जिससे ये कालेज मनमानी कर पाठ्यक्रमों को निपटा देते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है, लेकिन भारत की असंवेदनशील राजनीति को आरोप-प्रत्यारोप के अलावा अन्य विषय पर विचार का समय नहीं है।

साथ ही, यहाँ युवा सिर्फ रोजगार लेना चाहते हैं। कैसे हासिल करें, नहीं सोचते और न ही जोखिम लेना चाहते हैं। बेरोजगारी दूर करने के लिए शिक्षित युवाओं को रोजगार कैसे लें, के बारे में सोचना छोड़कर स्वरोजगार के माध्यम से दूसरों को कैसे रोजगार दें, इस पर विचार करना होगा। तात्कालिक उपाय के रूप में लोगों को निजी व्यवसायों में प्रशिक्षण व्यवस्था तथा उन्हें इसके लिए धन उपलब्ध कराया जाना चाहिए, ताकि लोग सरकारी नौकरियों की ओर न भागें।

गाँवों में लघु और कुटीर उद्योग, प्रसंस्करण उद्योग साथ ही उनके संग्रहण, विपणन, यातायात, सड़क निर्माण आदि को समृद्ध किया जाना चाहिए। इसके लिए बड़े उद्योगपतियों का सहयोग भी आवश्यक है।

देश में जनसंख्या की समस्या निर्विवाद है। एक तो खुद बेरोजगार हैं, इसके बावजूद दो-चार बेरोजगार और भी पैदा कर देते हैं। यह भी विचारणीय है।

इसके लिये, भारत में महिलाओं के लिये नौकरी या स्वरोजगार के अवसर आवश्यक हैं। यह उनकी आर्थिक मुक्ति और स्वतन्त्रता की दिशा में एक सही कदम होगा, लेकिन वर्तमान में आर्थिक रूप से महिलाओं के सीमित अधिकार हैं। उन्हें लाभकारी रोजगार और स्वरोजगार की गतिविधियों के उपयुक्त नहीं माना जाता है और आय अर्जित करने वाली महिलाओं को अपनी कमाई खर्च करने की भी स्वतन्त्रता नहीं है। यद्यपि भारत का संविधान दोनों को समान अधिकार व अवसर देता है। महिलाओं को विकास और रोजगार की मुख्य धारा में जोड़ने हेतु विभिन्न राज्य सरकारों ने अनेक योजनायें प्रारम्भ की हैं। उन्हें एक ही कार्य के लिये समान वेतन नीति के दायरे में लाया गया है। साथ ही चुनिंदा गैर-पारंपरिक व्यवसायों जैसे इलेक्ट्रानिक्स, घड़ी निर्माण, इसेंबलिंग, प्रिंटिंग और बाइंडिंग, हथकरघा, बुनाई और कटाई और परिधान निर्माण कार्यों हेतु महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जाता है, जिससे वे स्वावलम्बी होकर स्वरोजगार की दिशा में कदम बढ़ा सकें।

महिलाओं के लिये कई पॉलिटेक्निक और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किये गये हैं, जिससे कि शिक्षित और प्रशिक्षित महिलायें अपने छोटे-बड़े कारखाने और कार्यशालायें और उद्यम शुरू करने के लिये प्रोत्साहित हो सकें। महिलाओं के हित की रक्षा हेतु समान पारिश्रमिक अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम, अनैतिक यातायात रोकथाम अधिनियम और दहेज निषेध अधिनियम लागू किये हैं।

आज, महिलाओं में कैरियर व स्वरोजगार के प्रति अधिक जागरूकता है। वे परिवार के साथ व्यवसाय में भी आगे बढ़ना चाहती हैं। अतः उन्हें स्वरोजगार में अधिक अवसर प्राप्त कराने हेतु उद्योगों के लिये लाइसेंस देने और लघु उद्योगों के लिये बुनियादी कच्चे माल के आवंटन में वरीयता दी जा सकती है। बैंको और अन्य वित्तीय संस्थानों से उदार ऋण देकर उनके स्वरोजगार के अवसरों को और बढ़ाया जा सकता है। महिलाओं के लिए विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर और सेवायें तलाशी जानी चाहिए। चिकित्सा सेवाओं की तरह रक्षा सेवाओं में भी उनकी पर्याप्त भागीदारी

अपेक्षित है। महिलायें अब, पारम्परिक, रूढ़िबद्ध भूमिकाओं से संतुष्ट नहीं हैं। वे कारपोरेट जगत में भी शिखर पर पहुँचने को तत्पर हैं। यदि उनकी योग्यता, बुद्धि, शिक्षा, कौशल के साथ-साथ उमंग, उत्साह और ज्ञान को पंख नहीं दिये गये तो अन्ततः यह देश की ही बड़ी आर्थिक बर्बादी है।

उल्लेखनीय है कि अमेरिका में 19 नवम्बर 'इक्वल ऑपॉर्चुनिटी डे' के रूप में मनाया जाता है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के 'गैटीस्बर्ग भाषण' की वर्षगांठ के अवसर पर यह दिन मनाया जाता है। पेन्सिल्वेनिया प्रांत के गैटीस्बर्ग में 19 नवम्बर, 1863 को दिये इस ऐतिहासिक भाषण में लिंकन ने मान के समान अधिकारों और भेदभाव के बिना सभी को बराबरी के अवसर देने की बात कही थी।

भारत जैसे देश में जहाँ श्रमिक संख्या में अधिक है, वहाँ परिवार में कमाई करने वाला एक ही व्यक्ति हो तो उसकी आय परिवार को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने में काफी कम पड़ सकती है। रोजगार भी पहले से ज्यादा अनिश्चित हो गया है। ऐसी स्थिति में महिलाओं को काम पर लगाना अतिरिक्त आमदनी से ज्यादा एक बीमा भी है। यह रोजगार को लेकर महिला-पुरुष में टक्कर कराने वाली बात नहीं है। जाहिर है महिलाओं को शिक्षित कर आर्थिक स्वावलंबन देना पूरे समाज के हित में ही है और यह एक आर्थिक जरूरत भी है।

इसके दूरगामी उपायों में हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। हाईस्कूल तक सामान्य साक्षरता के बाद हमें व्यावसायिक शिक्षा के व्यापक परिवर्तन करने होंगे। व्यावसायिक शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि शिक्षा पूरी करने के बाद शिक्षित नवयुवक रोजगार तलाश करने के बजाय अपना छोटा-बड़ा कार्य प्रारम्भ कर सके।

शिक्षा प्रणाली में शिक्षित युवा बेरोजगारों की समस्या को दूर करने के जिम्मे उपाय प्रयोग में लाये जा सकते हैं—

- कौशल विकास पर जोर दिया जाए। उत्पादन तकनीक में परिवर्तन होने से वर्तमान में कुशल श्रमिकों की मांग बढ़ती ही जा रही है।

- तकनीकी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- व्यावसायिक शिक्षा शुरू की जानी चाहिए।
आज मैट्रिक, स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्रीधारी भी रोजगार पाने में असमर्थ हैं। एक अध्ययन के अनुसार मैट्रिक की तुलना में स्नातक एवं स्नातकोत्तर युवकों में बेरोजगारी की समस्या अधिक गम्भीर है।
- उपयुक्त ट्रेनिंग और नैतिक विकास श्रमिकों की उत्पादन क्षमता और परिश्रम के प्रति समर्पण को बढ़ाते हैं।
- शिक्षित बेकारी, श्रमिकों में वृद्धि करती है। अर्थव्यवस्था के विकास के लिए द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रक में तीव्र विकास होना चाहिए।
- 2016-17 के बजट में पहली बार रोजगार की वृद्धि के लिए 'स्टैण्ड अप' और 'स्टार्ट अप' जैसे कार्यक्रम शुरू किये गये हैं। स्टार्टअप इण्डिया सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अवसर देगा, जबकि स्टैण्डअप स्थानीय कारीगरों को अपना उद्योग बढ़ाने में सहायता देगा।
- निर्यात करने वाले उद्योगों, लघु एवं मध्यम दर्जे के उद्योगों तथा कृषि उत्पाद की प्रोसेसिंग करने वाले उद्योगों को बढ़ावा देने की जरूरत है। इससे गाँवों और कस्बाई क्षेत्रों के युवाओं को लाभ मिलेगा।
- कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी में बढ़ोत्तरी करें।
- महिलाओं का आर्थिक व सामाजिक जीवन में सहभागिता बढ़ाने और उनके सर्वांगीण विकास के लिये आवश्यक है कि संविधान प्रदत्त मूल अधिकारों को ढंग से गहन कर कार्यस्थलों में पृथक प्रकोष्ठ में महिला कार्मिकों की नियुक्ति की जाए।
- महिलाओं के विभिन्न अधिकारों की प्राप्ति हेतु सम्बन्धित न्यायिक प्रक्रिया को अधिक सरल, शीघ्रगामी और अल्पव्ययी बनाया जाए।
- ग्रामीण क्षेत्र में काम काजी महिलाओं के स्वरोजगार आधारित योजनाओं हेतु ग्रामीण क्षेत्र में ही ट्रेनिंग सेन्टर खोले जायें।

- और अन्त में, आपकी चाहे जो योग्यता हो, रोजगार करने और उसमें सफल होने के लिए केवल दो चीजें चाहिए— लीक से हटकर थोड़ा अलग नजरिया और हौसला।

संदर्भ ग्रन्थ

- *Economic Reforms, Unemployment and Poverty : The Indian Experience*, Meenu Agarwal, New Century Publication, 2016
- *Education, Unemployment and Masculinities in India* : Craig Jeffrey, Orient Blackswan, 2015
- *Industrial Growth and Employment in India* : Shoeb Ahmed, Kalpaz Publication, 2012
- *Poverty, Inequality and Unemployment in India* : K. N. Prasad, Concept Publishing Company Pvt. Ltd. 1993
- अर्थमेघा, कपिल आर्या, माइलस्टोन पब्लिशर्स, दिल्ली
- आधुनिक महिलायें और समाज उत्पीड़न, अत्याचार और अधिकार : संजय गौड़, बुक एनक्लेव, जयपुर, 2006
- कार्यशील महिलायें एवं भारतीय समाज : सुभाषचन्द्र गुप्त, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2004
- बेरोजगारी ऐ दास्तान : सत्यम राठौर, Notwn Press, चेन्नई
- बेरोजगारी कैसे दूर करें : मान सिंह नेगी, Notwn Press, चेन्नई
- महिला सशक्तिकरण : यथार्थ एवं आदर्श; डॉ. सहारिया, फूल सिंह वर्मा, बाबा पब्लिकेशन, जयपुर, 2018
- मानवाधिकार और महिलायें; पंकज गुप्ता साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर

बीसवीं सदी की हिन्दी समीक्षा पद्धतियों का समीक्षात्मक विश्लेषण

डॉ० कृष्णकान्त चन्द्रा*

हिन्दी समीक्षा से तात्पर्य आधुनिक हिन्दी समीक्षा से है, जो भारतेन्दु-युग की पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तक समीक्षा से आरम्भ होती है। अब यह सौ वर्ष पूरा कर चुकी है और अपनी समृद्धि की चरमसीमा पर निरन्तर विकास करते हुए विस्तार कर रही है। मानव की मूल प्रवृत्ति समीक्षा से प्रारम्भ होती है। कृति का सम्यक् मूल्यांकन जिसमें इन्द्रिय, बुद्धि, मन और हृदय को समन्वित किया गया हो। कुछ समीक्षक साहित्य-समीक्षा को सर्जन नहीं मानते, लेकिन समीक्षा सर्जनात्मक साहित्य है। कवि भाव और कल्पना के समन्वय से काव्य सर्जन करता है। हडसन के अनुसार कविता जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है और समीक्षा काव्य से। 'द डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर' में शिप्ले ने कहा कि प्रभाव, व्याख्या तथा मूल्यांकन का सामन्जस्य ही समीक्षा का वास्तविक एवं समीचीन स्वरूप है। समन्वय में ही समीक्षा का सर्वांगीण विकास निहित है।

हिन्दी समीक्षा आधुनिक युग में भारतेन्दुयुगीन समीक्षकों द्वारा संचालित हुई जिसका ध्येय जनजीवन से सम्पर्क स्थापित करना था। काव्य के साथ-साथ निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानी तथा समीक्षा आदि विधाओं में साहित्यालोचन का सूत्रपात सही अर्थों में इसी युग में हुआ। भारतेन्दु का प्रथम निबन्ध 'नाटक' 1883 ई० में प्रकाशित हुआ। पाश्चात्य एवं भारतीय, प्राच्य एवं नवीन दृष्टिकोण से समन्वित सामन्जस्य का स्वर मुखरित करने वाली हिन्दी समीक्षा सुदृढ़ता की तलाश कर रही थी। नवजागरण की इस बेला में गद्य के अनेक रूपों के स्वतः स्फूर्त रचनात्मक विस्फोट के कारण पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। साहित्य रचना और उसकी प्रेरणा की तरह इस दिशा में वास्तविक पहल स्वयं 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (1850-1885) ही करते हैं। 1873 में भारतेन्दु जी ने 'हरिश्चन्द्र

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल पी०जी० कॉलेज, बाराबंकी, उ०प्र०, ई-मेल:-dr.kkchandra@gmail.com

मैगजीन' नामक मासिक पत्रिका आरम्भ की और आठ अंकों के बाद उसका नाम बदल कर उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' कर दिया। हिन्दी गद्य के विकास और रूप निर्धारण में इस पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसमें पुस्तक समीक्षा होती थी। इस समय की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में कविवचन सुधा (1868), हिन्दी प्रदीप (1877), सारसुधा निधि (1878), क्षत्रिय पत्रिका (1881), आनन्द कादम्बिनी (1881), नागरी प्रचारिणी आदि साहित्यिक पत्रिकाएँ मुख्य थीं।

पुस्तक-समीक्षा द्वारा समीक्षा को नई दिशा उपाध्याय पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और पं० बालकृष्ण भट्ट की 'कादम्बरी' की प्रशंसात्मक समीक्षा 'आनन्द कादम्बिनी' में की थी। भारतेन्दु युगीन हिन्दी समीक्षा के प्रकाश स्तम्भ बाबू बालमुकुन्द गुप्त का साहित्यिक सेवाकाल इस युग में उत्तरवर्ती काल से प्रारम्भ होता है और द्विवेदी-युग के प्रथम चरण 1907 ई० तक चलता है। गुप्त जी ने यद्यपि मुख्य रूप से पात्र-सम्पादक के रूप में अपनी भूमिका अदा की, फिर भी भारत मित्र के प्रधान सम्पादक के रूप में सामयिक विषयों पर चर्चा के साथ-साथ समीक्षा का भी कुछ सीमा तक कार्य किया है। "कहा जा सकता है कि सन् 1890 से लेकर सन् 1907 तक हिन्दी साहित्य की परम्परा ने जो विकास प्राप्त किया है उसका कच्चा चिट्ठा गुप्त जी की कृतियों में संगुम्फित है।" गुप्त जी की समीक्षाओं में उनका अटूट राष्ट्र-प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। पं० प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दुयुगीन हिन्दी समीक्षा में उन उन्नायकों में से एक थे, जिन्होंने आधुनिक हिन्दी समीक्षा को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 'ब्राह्मण पत्र' के प्रायः प्रत्येक अंक में मिश्र जी किसी न किसी पुस्तक या पत्र की समीक्षा निकालते थे। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट, निर्भीक एवं निष्पक्ष था। उनका कहना था कि "हमको दूसरों की भाँति खुशामद करना नहीं आती कि कोरी प्रशंसा करूँ..... समालोचना के समय गुण-अवगुण प्रकट करना चाहिए।"²

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु युग की समीक्षा पुस्तक-समीक्षा के रूप में ही सामने आती है, लेकिन यह पुस्तक समीक्षा,

समीक्षात्मक सम्भावनाओं से भरी है। इसमें गुण-दोष विवेचन-प्रधान है, पर साथ ही इसका भी संकेत है कि कृति को सामाजिक और राष्ट्रीय सन्दर्भ से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति तो साहित्यिक कसौटी पर उसकी परीक्षा का भी प्रयत्न है।³ इस युग में आधुनिक हिन्दी समीक्षा की शुरुआत ही हुई थी जिसमें प्रशंसा और परिचय का मात्र संकेत मिलता है, गम्भीरता और परिपक्वता तथा यदा-कदा परिलक्षित होती है क्योंकि साहित्य को निरखने-परखने की दृष्टि बदलने के साथ-साथ साहित्य-मूल्यांकन का प्रतिमान भी बदला और हिन्दी समीक्षा भी।

द्विवेदी युगीन समीक्षा में समीक्षा विकास की एक मंजिल पार कर गया। इस युग में समीक्षा के दोनों पक्षों के बीच सामंजस्य मिलता है जिसमें नैतिकता, सहृदयता और सुरुचि को निश्चित धरातल प्रदान किया गया। संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रभावित सैद्धान्तिक पक्ष पाश्चात्य परम्परा में व्यावहारिक धरातल ढूँढ रहा था, जिसमें नैतिकता, सुधारवादिता, राष्ट्रीयता, उपयोगवादी दृष्टिकोण सर्वत्र व्याप्त था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन नवजागरण का मंच तैयार कर रहा था। आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी समीक्षा का सामयिकता का आँचल जागरूकता से पकड़ा दिया। नीति, औदात्य भाषा संस्कार तथा सुरुचि की वेदी पर शास्त्रीयता की शैली में द्विवेदी जी ने समन्वयवादी, पुनरुत्थानवादी तथा नूतनतावादी पद्धतियों का सूत्रपात किया।

द्विवेदी युग ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के अन्वेषण का काल है। अंग्रेजी के माध्यम से यूरोप की खिड़की खुल जाने से इस नई हवा के झोंके कभी-कभी तेज अंधड़ का रूप भी ले लेते दिखाई देते हैं। यूरोप की इस प्रभाव की प्रतिक्रिया में अपने प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के प्रति भी लोगों की रुचि नए सिरे से जाग रही थी। कुछ पश्चिमी भारतविदों और कुछ आर्यसमाज के आन्दोलन के कारण वेदों और वैदिक ज्ञान-परम्परा के प्रति भी लोगों की उत्सुकता बढ़ रही थी। प्राचीन इतिहास संस्कृति और धर्म के नाम पर जितना चिन्तन इस काल में हुआ उतना किसी दूसरे काल में शायद ही कभी हुआ हो। गौरीशंकर हीरचन्द ओझा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी,

काशी प्रसाद जायसवाल, सुधाकर द्विवेदी आदि ने संस्कृति, इतिहास, धर्म, भाषा आदि में अपने मौलिक चिन्तन से नई दिशा दी।⁴

इस युग के मिश्र बंधुओं का योगदान परिचयात्मक तथा निर्णयात्मक शैली के साथ-साथ विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक समीक्षा के विकास में स्मरणीय है। तुलनात्मक समीक्षा पद्धति का बीजारोपण भी मिश्र बंधुओं के हाथों सम्पन्न हुआ जिसको आचार्य शुक्ल ने भी स्वीकार किया है। तुलनात्मक समीक्षा पद्धति को व्यवस्थित धरातल प्रदान करके श्री पद्म सिंह शर्मा ने समीक्षा की विकास रेखा को और आगे बढ़ा दिया। स्वच्छन्दतावादी तथा प्रगतिशील साहित्य चिन्तन की दृष्टि शर्मा जी की समीक्षा पद्धति में सर्वत्र व्याप्त है।⁵ इनके अतिरिक्त इस युग के अन्य महत्वपूर्ण समीक्षकों में लाला भगवानदीन, बालमुकुन्द गुप्त, बाबू श्यामसुन्दर दास आदि।

शुक्ल युगीन समीक्षा में सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक सिद्धान्तों का समन्वय भारतीय परिवेश में हुआ है जिसमें रस-सिद्धान्त की स्थापना प्रमुख ध्येय रहा है। आचार्य शुक्ल इस समन्वयवादी पद्धति की शीर्षस्थ युग प्रवर्तक समीक्षक हैं जिनके अथक परिश्रम एवं चिन्तन-मनन से हिन्दी समीक्षा अपने वास्तविक स्वरूप को प्रतिष्ठित करने में कामयाब रही। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में – “आलोचना के क्षेत्र में शुक्ल जी ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्तों के उपयोगी तत्वों का सन्तुलन समन्वय कर समीक्षा के नये मानदण्ड प्रस्तुत किए।” (अनुसंधान एवं आलोचना) लोकमंगल की भावना से प्रेरित एवं प्रोत्साहित होकर आचार्य शुक्ल ने समीक्षा को जिस ऊँचाई पर पहुँचा दिया, वहाँ तक अज भी कोई समीक्षक नहीं पहुँच सका है। समीक्षा के क्षेत्र में शुक्ल जी की भूमिका एक युग पुरुष की भूमिका है। उन्होंने अनेक प्रवृत्तियों को नैतिकता एवं लोकहिताय की भावना से समन्वित करके विस्तार दिया है। तुलसी, सूर एवं जायसी पर भूमिका लिखकर शुक्ल जी ने समीक्षा परम्परा में एक नया अध्याय जोड़ दिया जिसमें भारतीय एवं पाश्चात्य पद्धतियों का सामन्जस्यमय प्रस्तुतीकरण प्रतिबिम्बित होता है।

सर्जनात्मक साहित्य के रूप में समीक्षा विधा को गौरव प्रदान करने वाले प्रथम समीक्षक आचार्य शुक्ल जी हैं। हिन्दी साहित्य का इतिहास मात्र इतिहास नहीं अपितु मानक समीक्षा ग्रंथ है। यही कारण है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को कहना पड़ा कि “समीक्षा के क्षेत्र में उनके समकक्ष कोई दूसरा आलोचक नहीं।”⁶ शुक्ल जी का लोकधर्म का सिद्धान्त मध्यवर्ग की उन आदर्शात्मक प्रेरणाओं से ओतप्रोत जो बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण की विशेषता थी।⁷ अपने स्वाभाविक गाम्भीर्य के कारण शुक्ल जी ‘रामचरितमानस’ के महाकाव्योचित प्रसंगों में रम गए थे।

हिन्दी समीक्षा की विकास रेखा को आगे बढ़ाने वाले इस युग के अन्य प्रमुख समीक्षकों में बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू गुलाब राय, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, डॉ० रमाशंकर शुक्ल ‘रसाल’, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, पद्मलाल पुन्नलाल बख्शी, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़वाल, डॉ० रामकुमार वर्मा आदि हैं। शुक्ल युग में हिन्दी समीक्षा गुण-दोष विवेचन के ऊपर उठकर विस्तार पाती है और गहराई में उतरती है तथा व्यावहारिक समीक्षा को एक नया मार्ग प्रशस्त हुआ।

छायावाद के प्रवर्तक का श्रेय कुछ लोग मुकुटधर पाण्डेय को देते हो लेकिन इस काव्य आन्दोलन और कविता की बदली हुई संवेदना का जैसा सूक्ष्म और व्यवस्थित विवेचन उसके चारों प्रमुख कवियों जयशंकर प्रसाद ‘निराला’, सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा में उपलब्ध है वह इस काव्य-प्रवृत्ति की समझ को विस्तार देता ही है, वह हिन्दी समीक्षा की भी एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। ये कवि शुक्ल जी की इस धारणा से सहमत नहीं थे कि छायावाद का स्त्रोत विदेशी है और ईसाई संतों का छायाभाष बंगाल से होता हुआ हिन्दी में आ पहुँचा है। शुक्ल जी छायावाद को शैली मात्र मानते थे। इस शैली की आवश्यकता किसी कथा विशेष के कारण थी या मुकुटधर पाण्डेय इत्यादि कवियों द्वारा प्रवर्तित स्वच्छन्दतावाद के अतिरिक्त छायावाद को कोई सामाजिक आधार था, यह शुक्ल जी नहीं मानते।⁸ शुक्ल जी की छायावाद विरोधी समीक्षा-दृष्टि और छायावाद के कवि-आलोचकों द्वारा अपने कृतित्व की व्याख्या विश्लेषणात्मक समीक्षकों

के समानान्तर ऐसे समीक्षकों का भी एक वर्ग उभर रहा था, जिन्होंने अत्यन्त सहृदयता से छायावाद की सहानुभूतिपूर्ण व्याख्याएँ की। इनमें शान्तिप्रिय द्विवेदी का विशेष स्थान है। ये प्रभाववादी समीक्षक के रूप में जाने जाते हैं। समीक्षा के अतिरिक्त हिन्दी की अन्य विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, यात्रावृत्तान्त, रेखाचित्र आदि का विकास इस समय हो रहा था। इस समय के अन्य साहित्यकारों में गंगाप्रसाद पाण्डेय, परशुराम चतुर्वेदी, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा आदि महत्वपूर्ण हैं।

1936 ई० में “प्रगतिशील लेखक संघ” की स्थापना हुई, जिसका प्रथम अधिवेशन हुआ जिसके अध्यक्ष प्रेमचन्द थे। इसी समय से साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरुआत मानी जाती है। इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि हमारे साहित्य में प्रगतिशील तत्व इसके पूर्व सक्रिय नहीं थे। प्रगतिवादी आन्दोलन का सम्बन्ध मार्क्सवाद से है। इसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है और वह प्राचीन साहित्य का अध्ययन तत्कालीन सामाजिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में करता है। मार्क्स मानते हैं कि साहित्य शोषित जनता के लिए लिखा जाना चाहिए था तथा इसका लक्ष्य वर्तमान व्यवस्था में सम्पूर्ण परिवर्तन होना चाहिए।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के अवसर पर अध्यक्षीय भाषण देते हुए प्रेमचन्द साहित्य के बदलते हुए स्वरूप और लेखकों की कार्यभार की चर्चा विस्तार से की थी। उन्होंने सुलाने वाले साहित्य की नहीं, जगाने वाले साहित्य की बात की। इसी के अनुरूप उन्होंने साहित्यिक मूल्यांकन के लिए प्रतिमानों और सौंदर्यशास्त्र का सवाल भी उठाया। एक ओर यदि उन्होंने साम्राज्यवाद विरोधी चेतना को अपनी चिन्ता के केन्द्र में रखा, वही एक वर्ग और वर्ण विहीन समाज की स्थापना पर बल दिया। कुल मिलाकर सारा जोर मानवतावादी और यथार्थवादी साहित्य के विकास पर था।

सन् 1937 में ‘विशाल भारत’ में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान का निबन्ध ‘भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता’ एक ओर यदि प्रगतिशील साहित्य की प्रकृति स्पष्ट करते हुए भारतीय साहित्य और समाज में उसकी आवश्यकता को रेखांकित करने वाला था, वहीं अपने

अनेक स्थापानाओं के कारण बहुत विवादास्पद भी साबित हुआ। इस समय के महत्वपूर्ण प्रगतिवादी समीक्षकों में रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त, भगवतशरण उपाध्याय, रांगेय राघव, मुक्तिबोध, नामवर सिंह, विशम्भरनाथ उपाध्याय, शिव कुमार मिश्र, रमेश कुंतल मेघ, सुरेन्द्र चौधरी, चन्द्रभूषण तिवारी, हृषीकेश आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रगतिशील लेखक संघ का जो घोषणा पत्र यूरोप में मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर सहित अन्य भारतीय लेखकों ने तैयार किया था उस पर कुल मिलाकर एक व्यापक सहमति थी। एक आन्दोलन के रूप में विश्व के अनेक महत्वपूर्ण और सक्रिय लेखक एक साथ थे। इस संघ में अनेक ऐसे लेखक भी शामिल हुए जो मूलतः कम्युनिस्ट विचारधारा के विरोधी थे। प्रगतिशील लेखक संघ के फासिस्ट-विरोधी सम्मेलन में कुछ अन्य लेखकों सहित अज्ञेय भी शामिल हुए थे। इसकी मानवतावादी, युद्धविरोधी और शान्तिपूर्ण भूमिका के कारण ऐसे अनेक लेखक भी इस आन्दोलन से किसी न किसी रूप में अपनी सहानुभूति रखते थे जो न तो आन्दोलन से सहानुभूति रखते थे, न ही किसान चेतना से। वे मार्क्सवादी लेखकों की तरह धर्म और ईश्वर को खारिज करने के प्रति भी उत्साहित नहीं थे। अज्ञेय की तरह इलाचंद जोशी, धर्मवीर भारती, रघुवंश, लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजय देवनारायण साही, देवराज, देवीशंकर अवस्थी आदि हिन्दी में प्रगतिशील समीक्षा के समानान्तर 'परिमल' से सीधे तौर पर जुड़े और प्रगतिवादी समीक्षा को आत्मालोचन के लिए प्रेरित किया। नामवर सिंह और धर्मवीर भारती इस उग्र विवाद के दो छोर हैं। इसके अतिरिक्त और भी लोग हैं जो मूलतः समीक्षक न होने पर भी इस दौर की समीक्षा में देखे जा सकते हैं। भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर मावचे, विपिन कुमार अग्रवाल, मलयज आदि।

हिन्दी समीक्षा के समकालीन आलोचना अनेक विवादों एवं रचनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। विभिन्न समीक्षा दृष्टियों की टकराहट भले ही उसमें संवाद कम और विवाद अधिक हो, भी इस परिदृश्य की एक विशिष्ट पहचान मानी जा सकती है। इस समय की समीक्षा में एक ओर यदि कलावादी

रुझानों की सक्रियता बढ़ी है, उसकी पुर्नस्थापना के प्रयासों में तेजी आई है, वहीं साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का भी विकास हुआ है और साहित्य के समाज एवं राजनीति के अन्तःसम्बन्धों को नए सिरे से परिभाषित करने के प्रयास भी स्पष्ट लक्षित किये जा सकते हैं। हिन्दी में काव्यालोचन की एक सुदीर्घ और सुस्थापित परम्परा की उपस्थिति के कारण यह स्वाभाविक है कि समीक्षा का अधिकांश आज भी कविता पर केन्द्रित है। इसमें एक ओर यदि कुँवर नारायण से लेकर अरुण कमल तक कवि समीक्षकों की सक्रिय हिस्सेदारी देखी जा सकती है, वहीं बच्चन सिंह से लेकर ललित कार्तिकेय तक आकर्षित कर रहे हैं। जबकि इसके बावजूद कथा समीक्षा का तेजी से विकास हुआ है। नाट्यालोचना भारतेन्दु काल से ही दिखाई देने लगी थी।

समकालीन समीक्षा में काव्यालोचना के समीक्षक बच्चन सिंह, प्रेमशंकर, निर्मला जैन, विष्णुचन्द्र शर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी, नन्दकिशोर नवल, धनन्जय वर्मा, अशोक वाजपेयी, कुँवर नारायण, निर्मल वर्मा, रमेश चन्द्र शाह, नन्दकिशोर आचार्य, विष्णु खरे, बागीश शुक्ल, मदनसोनी आदि पर विचार-विश्लेषण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रभाकर 'श्रोत्रिय', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, हरदयाल, लल्लन राय, विजयबहादुर सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अजय तिवारी, चंचल चौहान, सुधीश पचौरी, कर्ण सिंह चौहान आदि महत्वपूर्ण हैं। काव्यलोचना एवं कथा के अन्तर्गत, गोपाल राय, नवल किशोर, विजय मोहन सिंह, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, रमेश उपाध्याय आदि तथा नाट्यलोचना के अन्तर्गत नेमिचन्द्र जैन, गिरीश रस्तोगी, सुरेश अवस्थी, जयदेव तनेजा, मुद्राराक्षस आदि। विचार-विमर्श दृष्टि से मैनेजर पाण्डेय, ओमप्रकाश ग्रेवाल, कमला प्रसाद, कुँवर पाल सिंह, खगेन्द्र ठाकुर, भवदेव पाण्डेय, नित्यानन्द तिवारी, शम्भूनाथ सिंह, वीर भारत तलवार आदि।

हिन्दी की समीक्षा पद्धतियों के जहाँ तक साम्य एवं वैषम्य का सम्बन्ध है तो हम निम्नलिखित समीक्षा पद्धतियों के माध्यम से कर सकते हैं – सौष्टवादी एवं स्वच्छन्दतावादी समीक्षा पद्धतियों के माध्यम से कर

सकते हैं — सौष्ठववादी एवं स्वच्छन्दतावादी समीक्षा, मनोविश्लेषणवादी, मार्क्सवादी या प्रगतिवादी, रसवादी, शैली वैज्ञानिक, शास्त्रीय समीक्षा, अन्वेषण एवं अनुसंधानपरक समीक्षा, नई समीक्षा—प्रयोगवाद, अतियथार्थवादी, अव्यक्तिवाद प्रभाववादी समीक्षा, चरितमूलक समीक्षा, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समीक्षा, मिथकीय समीक्षा, समन्वयवादी समीक्षा, आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी की समीक्षा एक सामासिकी समीक्षा है। यह विभिन्न तत्त्वों को ग्रहण करके ही आगे बढ़ी है क्योंकि हर चरण की समीक्षा में यह देखने को आया है कि हिन्दी की समीक्षा अपने समय की सर्जना से सही मायनों और सही आधारों पर होते हुए उसके साथ पूरी तरह से न्याय नहीं कर सकी है लेकिन कोई भी समीक्षा वैचारिक एवं सैद्धान्तिक आधार पर कितना भी तर्क पुष्ट क्यों न हो, ऊर्जा संप्राप्ति तथा नवोन्मेष वह अपने समय की सर्जना से सम्वाद करके उसमें हस्तक्षेप करके, उससे मुठभेड़ करके ही आगे बढ़ती है। अपने समय की सर्जना ही उसे मूल्यांकन की नई दृष्टि एवं नये प्रतिमान देती है। उसे रीढ़ के बल सीधा खड़ा किये रहती है।

संदर्भ ग्रन्थ

- आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास : डा० वेंकट शर्मा, पृ०सं० 176
- ब्राह्मण पत्रिका खण्ड-3 : प्र० प्रताप नारायण मिश्र, पृ०सं० 12
- आधुनिक हिन्दी आलोचना का विकास : नन्दकिशोर नवल, पृ०सं० 37
- हिन्दी आलोचना का विकास : मधुरेश, पृ०सं० 24
- हिन्दी आलोचना का विकास एवं प्रवृत्तियाँ : डा० पशुपतिनाथ उपाध्याय, पृ०सं० 9
- वही, पृ०सं० 9
- हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ : सं० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल – सुरेश चन्द्र गुप्त, पृ०सं० 71
- हिन्दी आलोचना : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ०सं० 84

ग्रामीण अधोसंरचना विकास (पुनर्निर्माण) और पंचायती राज व्यवस्था (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में)

डॉ. कौशलेन्द्र गुप्ता*

भारत गांवों का देश है। गांव में सत्ता के विकेन्द्रीकरण का व्यावहारिक चित्र ग्राम पंचायत के द्वारा प्राप्त होता है। भारत में पंचायतों का इतिहास अत्यंत ही प्राचीन है। भारत में पंच को परमेश्वर की संज्ञा दी गई है। इन पंचों के निर्णय को समाज में सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती थी।

भारत में पंचायती राज की स्थापना स्वतंत्रता के बाद सन 1959 में बलवंतराय मेहता कमेटी की सिफारिश पर हुई थी। इस कमेटी ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सिफारिश की। पंचायत शब्द का प्रयोग पांच पंचों की सभा के लिए होता है, जो गांव के सामूहिक मामलों पर फैसला रकती है। यह सामान्यतः एक स्थानीय स्वशासी संस्था है।

पंचायतों का पुनर्गठन

पंचायतीराज व्यवस्था को आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समुचित अधिकार दिये गये हैं। पंचायतों को स्वशासन के अधिकार सौंपे गये हैं, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, पानी, खेती, उद्योग धंधे तथा भवन निर्माण प्रशासन और न्याय आदि से सम्बन्धित विभिन्न कर्तव्यों को पूर्ण करने की व्यवस्था पंचायतों करती है। ग्राम पंचायतें ग्राम के सभी वयस्क तथा मत देने योग्य व्यक्तियों द्वारा चुनी जाती हैं। विभिन्न राज्यों में अलग-अलग नियमों के अंतर्गत पंचायती न्याय की स्थापना की गई है।

पंचायती राज के अंतर्गत ग्रामीण प्रशासन को तीन श्रेणियों में बांटा गया है—

पंचायत राज व्यवस्था का त्रिस्तरीय स्वरूप

जिला स्तर पर	खण्ड स्तर पर	ग्राम पंचायत पर
जिला परिषद	पंचायत समिति	ग्राम पंचायत

* सहा. प्राध्यापक महाराजा मानसिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

इस प्रकार ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत समस्त प्रशासनिक तथा न्यायिक और कल्याणकारी कार्यों को पूर्ण करती है। ग्रामीण पंचायत पर सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। पंचायत इन्सपेक्टर, पंचायत अधिकारी तथा पंचायत निदेशक विभिन्न स्तरों पर पंचायतों के कार्यों पर दृष्टि रखते हैं।

म.प्र. आकार में दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल 308245 वर्ग कि.मी. है। इसके 52 जिलों को प्रशासनिक आधा पर राजस्व संभागों में बांटा गया है। गांवों की विशाल संख्या 51,806 से ही स्पष्ट है कि यह एक ग्रामीण आधार वाला राज्य है। म.प्र. में 26 जनवरी 2001 से ग्राम स्तर की शासन व्यवस्था ग्राम स्वराज्य स्थापित किया गया। जिसके तहत ग्राम सभा को गांवों में विकास और कल्याण-कारी गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण शक्तियां प्रदान की गई है।

मध्यप्रदेश राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा म.प्र. में पंचायती राज संस्थाओं की संख्या और त्रिस्तरीय वर्गीकरण विस्तृत रूप से जारी किया गया है। ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर), जनपद पंचायत (खण्ड स्तर) और जिला पंचायत (जिला स्तर)। इसके अतिरिक्त ग्राम सभा पंचायती राज व्यवस्था की एक आधारभूत इकाई है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी

पंचायती राज व्यवस्था में प्रारंभिक अवस्था पूर्णतः असफल सिद्ध हुई, क्योंकि इसका मुख्य कारण सत्ता का पिछड़े वर्गों के स्थान पर गांव के उच्च एवं विशेष वर्गों के हाथों में चले जाना था। वास्तव में स्थिति ऐसी थी कि जिन वर्गों के उत्थान के लिये ग्राम पंचायती राज की व्यवस्था शुरू की गई थी, उन्हीं वर्गों को पंचायती राज की व्यवस्था से दूर रखा गया। इनमें से एक वर्ग महिलाओं का भी था। कलान्तर में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके उपर्युक्त अर्थों में पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं को भागीदार बनाने का निर्णय लिया गया। संविधान में 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन के तहत पंचायतों में महिलाओं को तिहाई आरक्षण प्रदान किया गया। इस संविधान संशोधन के बाद आज घर की चार दिवारी के अंदर बंद महिलाओं ने बाहर

समाज में आकर एक प्रशासन के रूप में जिस प्रकार अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है वह निःसंदेह ग्रामीण समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन का कदम है। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सक्रिय भागीदार से उन्हें जो नया परिवेश मिल रहा है, वह इनके लिए प्रगति तथा विकास के नये आयाम तो स्थापित कर ही रहा है साथ ही पुरुष समाज के वर्चस्व पर भी अंकुश लगाने का काम भी कर रहा है।

ग्राम पंचायतों के कार्य

ग्रामीण पंचायतें ग्रामीण पुनर्निर्माण और पुर्नस्थापना में निम्नलिखित महत्वपूर्ण योगदान देती हैं –

1. जनसंख्या के सुधार एवं रोगों के उपचार में सहायता।
2. सफाई का प्रबन्ध
3. शुद्ध पेयजल की व्यवस्था।
4. यातायात की सुविधा।
5. प्राकृतिक विपदाओं में सहायता।
6. सांस्कृतिक उन्नति में सहायक।
7. मातृत्व व शिशु कल्याण में सहायक।
8. शोषण से मुक्ति
9. शिक्षा की व्यवस्था।
10. मद्यनिषेध एवं मादक पदार्थों के उपयोग पर रोक।
11. कृषि में सुधार।
12. सिंचाई की व्यवस्था।
13. उद्योग धंधों का विकास
14. शांति एवं सुरक्षा।
15. प्रशासन में सहायता।
16. न्याय की व्यवस्था।
17. नागरिकता की शिक्षा।

ग्राम पंचायतों की असफलता

पंचायती राज संस्था से सम्बन्धित अनेक ऐसी समस्याएँ हैं, जो इनके सफलतापूर्ण कार्य संचालन में बाधक है। जब तक इन समस्याओं का सही परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके निराकरण नहीं किया जाता, तब तक इन संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्य अधूरा ही रहेगा। कुछ समस्याएँ निम्न प्रकार हैं –

1. ग्राम पंचायतों ने ग्रामीण जनता में तनाव तथा संघर्ष को जन्म दिया है। चुनावों के कारण ग्रामीण जीवन में बैमनस्य व्याप्त हो जाता है, जो ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याओं को जन्म देती है।
2. ग्रामीण परिवेश में जातिय आधार पर चुनाव लड़े जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जातिवाद की भावना का विकास होता है।
3. साधनों के अनुचित दुरुपयोग और घूस लेकर ग्राम पंचायतों ने भ्रष्टाचार को ग्रामीण स्तर पर फैलाया है।
4. ग्रामीण परिवेश में प्रजापतंत्र की भावना का अभाव होना असली समस्या है।
5. अशिक्षा के कारण ग्रामीण जनता पंचायतों के वास्तविक महत्व को नहीं समझ पाती है।
6. ग्रामीण जीवन की आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही गिरी हुई है, इस स्थिति के कारण गांव के योग्य और कर्मठ व्यक्ति पंचायतों के कार्यों में नहीं फंसना चाहते।

वर्तमान भारतीय ग्राम पंचायतों में व्याप्त उपर्युक्त दोषों के कारण इन्हें सफलता प्राप्त नहीं हो पाती है। यही कारण है कि ग्राम पंचायतें अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल हो जाती है।

पंचायती राज संस्थाओं को सफल बनाने हेतु सुझाव

पंचायती राज संस्था को सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं –

1. ग्राम पंचायतों में टैलीफोन, फैक्स, कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिये। जिससे आम जनता की पहुँच बन सके। इस

प्रकार जहां ग्राम पंचायतें अपने लक्ष्यों में सफल हो सकेंगी, बल्कि सूचना प्रौद्योगिकी यथार्थ में ग्रामीण विकास में सहायक होगी।

2. पंचायती राज संस्थाओं को सफल बनाने हेतु यह आवश्यक है कि इनसे सम्बद्ध सरकारी अधिकारियों और जनप्रतिनिधियों के बीच सन्देह और अविश्वास को दूर किया जाए और सम्बन्धों में सुधार लाये जाए।
3. पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण गुटबंदी, दलगत राजनीति से मुक्त रखने का प्रयास किया जाना चाहिए जो कि गांवों के सर्वांगीण विकास में बाधक है।
4. पंचायती राज संस्थाओं को अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए।
5. कमजोर एवं गरीब वर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।
6. सामाजिक न्याय की दृष्टि से विकास योजनाओं का लाभ का वितरण सभी लोगों को समान रूप से होना चाहिए।
7. पंचायतों के सफल कार्य संचालन के लिए, वित्तीय साधनों का बढ़ाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

संदर्भ ग्रन्थ

- अग्रवाल, डॉ. अमित – भारत में ग्रामीण समाज, विवेक प्रकाशन, आर.के. ऑफसेट पंचशील गार्डन, दिल्ली-32, 2006
- श्रीनिवास, एम.एन. – सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया, 1966
- दुबे, डी.सी. – ए सोशियोलॉजिकल स्टडी ऑफ पंचायती राज, 1961
- ए जर्नल ऑफ एशिया फोन डेमोक्रेसी एण्ड डवलपमेंट (आई.एस.एस.एन. 0973-3833) खण्ड X 2010
- इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली (मुम्बई) के विभिन्न अंक
- प्रताप सिंह – आधुनिक भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर)

“समकालीन आलोचना और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल”

डॉ. शार्दूल विक्रम सिंह*

‘समकालीन आलोचना’ में समकालीन शब्द पर प्रश्न सम्भव है कि यह मात्र कालपरक अर्थ का द्योतक है या यह किसी मूल्य-व्यवस्था का अंग भी है? साहित्य का ऐतिहासिक काल विभाजन समकालीनता को आधुनिकता से जोड़कर देखता है जो प्रगतिवाद और उसके विरोध को रेखांकित करता है। ‘आलोचना’ शब्द समकालीन की भांति विवादास्पद तो नहीं किन्तु यदि इसे मोटे तौर पर परिभाषित करना हो तो किसी भी रचना के विषय में बातचीत करना ‘आलोचना’ है, जिसे सरल और सहज बनाने के लिए विभिन्न क्रियाएं सहायक होती हैं।

हिन्दी आलोचना अपने प्रारम्भिक वर्षों से रचनात्मक रही है। तत्कालीन प्रश्नों से वह उसी प्रकार जूझी है, जिस प्रकार एक रचना जूझती है। तथापि समकालीन हिन्दी आलोचना का यह सौभाग्य रहा है कि उसके समक्ष हिन्दी का अधिकांश साहित्य प्रकाशित तथा उपलब्ध है। कई लेखकों की रचनावलियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, शोधकर्ताओं ने अनेक विलुप्त रचनाओं को ढूँढ निकाला है, सम्पादकों ने प्राचीन साहित्य के पाठ्य निर्धारण का कार्य किसी सीमा तक कर लिया है। नए लेखकों की रचनाएँ यथाशीघ्र प्रकाशित होकर सुधी जनमानस के आमोद-प्रमोद का कारण बनती हैं। वस्तुतः आज प्राचीन और आधुनिक साहित्य पहले की अपेक्षा भौतिक रूप में उपलब्ध है।

रचना और आलोचना की गति वर्तमान से अतीत और वर्तमान से भविष्य तक की दूरी तथ्यों, कल्पनाओं और अनुमान के सहारे तय करती रहती है। आधुनिक काल की हिन्दी आलोचना को रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों की परिपाटी विरासत में मिली थी परन्तु उस परिपाटी को त्यागकर

* एसो.प्रो. हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमो. पी. जी. कॉलेज, बाराबंकी (उ.प्र.)

नए आलोचना मार्ग की आवश्यकता का अनुभव आधुनिक युग ने किया; उसका एक बहुत बड़ा कारण साहित्य के पाठक समुदाय की परिवर्तनशील रुचि थी। निस्सन्देह आलोचना का दायित्व भी इसी पाठक समुदाय की रुचि से सम्बद्ध हो गया। भारतेन्दु युग के आलोचकों ने आलोचना की जिस जनवादी परम्परा को जन्म दिया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जिसका विकास किया, उसकी चरम परिणति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना में हुई।

मात्र समकालीन ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण हिन्दी आलोचना का यह परम सौभाग्य रहा है कि इस क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कार्य किया। उनका कृतित्व हिन्दी आलोचना को आधार तो देता ही है, समर्थ आलोचना का मानक रूप भी प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि हिन्दी आलोचना के उस दौर को 'शुक्ल युग' की संज्ञा दी गयी और उसे ही हिन्दी में वास्तविक आलोचना का प्रस्थान बिन्दु स्वीकार किया गया। कोई अचरज नहीं कि यहीं से हिन्दी आलोचना अपनी पुरानी परम्परा के व्यामोह से मुक्त होकर सही और सार्थक भूमिका ग्रहण करती हुई दृष्टिगत होती है। इस प्रसंग में डॉ० राम विलास शर्मा का मत द्रष्टव्य है— "हिन्दी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्व है जो उपन्यासकार प्रेमचन्द या कवि निराला का। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामन्ती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचन्द और निराला ने। उन्होंने बाह्य जगत् और मानव जीवन की वास्तविकता के आधार पर सामन्ती साहित्य का विरोध किया और देशभक्ति तथा जनतन्त्र की साहित्यिक परम्परा का समर्थन किया।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पहले ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने परम्परागत आलोचना शैलियों के प्रति सम्मान का भाव रखकर अपने युग की आवश्यकताओं को पहचाना और उनके अनुरूप अपनी आलोचना शैली विकसित की।

आलोचना की पूर्व स्थापित परम्परा की न्यूनताओं को प्रदर्शित करना, साथ ही उन्हें दूर करना शुक्ल जी की आलोचना का आधार तथ्य है। इस

दृष्टि से संस्कृत काव्यशास्त्र की विवेचना करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि उक्त साहित्य में गुण-दोष की विस्तृत व्याख्या ही आलोचना का उद्देश्य है। वस्तुतः उनकी दृष्टि में संस्कृत साहित्य में समालोचना का पुरातन स्वरूप यह था कि जब कोई आचार्य या साहित्य मीमांसक कोई नवीन लक्षण-ग्रन्थ लिखता था तब जिन काव्य रचनाओं को वह उत्कृष्ट स्वीकार करता था, उन्हें रस, अलंकार आदि के उदाहरणों के रूप में उद्धृत करता था और जिन्हें शास्त्रीय दृष्टि से दूषित समझता था उन्हें दोषों के उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत करता था।²

शुक्ल जी का मानना था कि किसी कवि या पुस्तक के गुणदोष प्रदर्शित करने के लिये पुस्तकीय आकार की समीक्षा की परम्परा संस्कृत में नहीं थी। ध्यातव्य है कि आलोचना की दृष्टि से पुस्तक लिखने का कार्य सर्वप्रथम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रारम्भ किया था। स्वयं रामचन्द्र शुक्ल जी ने सैद्धान्तिक चिन्तनपरक लेखों में हिन्दी आलोचना का प्रारम्भ नहीं देखा। उन्हें सम्पूर्णता में कृति की समीक्षा में हिन्दी आलोचना का बीज दिखायी दिया।

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में शुक्ल जी का सर्वाधिक उत्कृष्ट प्रदेय यह है कि उन्होंने साहित्य के सम्बन्ध में एक सुसंगत दृष्टिकोण के निर्माण का प्रयत्न किया। यह दृष्टिकोण ज्ञान के उस भौतिकवादी सिद्धान्त पर आधारित है, जिसके अनुसार ज्ञान और भाव का आधार यह भौतिक जगत् ही है। अपने प्रसिद्ध निबन्धालेख 'कविता क्या है' में वे कहते हैं, "जो तथ्य हमारे किसी भाव को उत्पन्न करे, उसे उस भाव का आलम्बन कहना चाहिये। ऐसे रसात्मक तथ्य आरम्भ में ज्ञानेन्द्रियाँ उपस्थित करती हैं। पुनः ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त सामग्री से भावना या कल्पना उनकी योजना करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान ही भाव प्रसार के संचार लिये मार्ग खोलता है।"³

आलोचना के विभिन्न विचार बिन्दुओं का स्पर्श करते हुए आचार्य शुक्ल 'अर्थक्रीड़ा' की प्रवृत्ति पर भी टिप्पणी करते हैं। उनका मानना है, हमारे यहाँ के पुराने व्याख्याताओं और टीकाकारों की अर्थक्रीड़ा प्रसिद्ध है।

किसी पद्य का सामान्य से अलग अर्थ करना उनके बाएँ हाथ का खेल है। तुलसीदास जी की चौपाइयों के बीस-बीस अर्थ करने वाले अभी मौजूद हैं।⁴ इसके अतिरिक्त प्रभाववादी समीक्षा की कटु आलोचना करते हुए उन्होंने सजीले पदविन्यास और दुःसह भाव भंगिमाओं के माध्यम से प्रस्तुत किये जाने वाले प्रभाव विश्लेषण को नकार दिया। उनका मानना था कि किसी कवि की आलोचना कोई इसीलिये पढ़ने बैठता है कि उस कवि के लक्ष्य को, उसके हार्दिक भावों को हृदयंगम करना सहज हो, इसलिये नहीं कि प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा द्वारा वह अपना मनोरंजन करे।

उक्त के साथ उनकी आलोचना के केन्द्र में यूरोपीय साहित्य चिन्तन का अधिकचरा प्रभाव भी रहा। वहाँ की दो प्रमुख प्रवृत्तियों— ‘अभिव्यंजनावाद’ और ‘कला, कला के लिये’ की उन्होंने प्रखरता से आलोचना की, साथ ही अपने अनुरूप विचारों का दर्शन प्रस्तुत करने वाले अमेरिका के प्रख्यात आलोचक आई०ए० रिचर्ड्स का समर्थन भी किया। किसी अन्य समकालीन आलोचक से संतुष्ट न होना, उनका अहंकार नहीं था अपितु उनकी अपनी वैचारिक दृष्टि अन्य के सापेक्ष सबल हो जाती थी। दूसरों में दोष देखकर और दिखाकर सन्तुष्ट हो जाने वाले विचारक शुक्ल जी नहीं थे। मलयज ने उपयुक्त लिखा है—“आज यह खुले मन से कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल के पहले साहित्य को ‘शास्त्र’ करके दिखाने वाली आँखें ही थीं, साहित्य को ‘मर्म’ कहकर बताने वाली आँखें नहीं।⁵ उन्होंने हिन्दी साहित्य को देखने की ऐसी दृष्टि दे दी, जो हिन्दी पाठकों का संस्कार बन गई। इस संस्कार को मिटाना, इसे पुनः संस्कारित करना कितना मुश्किल है, इसे शुक्ल जी के बाद आने वाले बड़े आलोचकों के लेखन में देखा जा सकता है।⁶

जिन कवियों और लेखकों का मूल्यांकन शुक्ल जी ने कर दिया है, उन पर तब तक हम कोई विचार नहीं कर सकते, जब तक हम यह न जान लें कि स्वयं आचार्य शुक्ल के इनके विषय में क्या विचार थे। निस्सन्देह शुक्ल जी का मूल्यांकन तटस्थ प्रखर, और मार्मिक स्वीकार किया जा सकता है। उन्होंने “हिन्दी साहित्य का इतिहास” लिखकर हिन्दी साहित्य

की ऐसी तस्वीर प्रस्तुत कर दी है, जिसे हम जब चाहें, जहाँ से चाहें देख सकते हैं। इस ग्रन्थ ने और बातों के अलावा इतिहास में कवियों का स्थान 'लगभग' निश्चित कर दिया, जिसे न्यूनतम परिवर्तन के साथ आज भी ज्यों का त्यों मान लिया गया है।

आलोचना के क्षेत्र में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते हुए, आचार्य शुक्ल ने जायसी ग्रन्थावली, भ्रमरगीत सार, चिन्तामणि, रस मीमांसा आदि पुस्तकों के माध्यम से प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र का मूल्यांकन तो किया ही; सूर, तुलसी, जायसी के साहित्य को अपने दृष्टिकोण से टटोलने का प्रयास किया, जिनके माध्यम से उनके मन्तव्य को समझा जा सकता है।

पूर्ववर्ती आलोचनाओं के विपरीत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्यिक कृतियों के गुण-दोष पर तो प्रकाश डालते हैं, साथ ही साहित्य की सांस्कृतिक योजना प्रस्तुत करते हुए अपने आलोचना-कर्म के सूत्र भी सुधीजनों के समक्ष अभिव्यक्त करते हैं। निस्सन्देह उनका उद्देश्य विरुद्ध मत का खण्डन करना नहीं, अपितु अपनी सकारात्मक आलोचक मान्यता को प्रस्तुत करना है। आलोचना की दृष्टि से शुक्ल जी विरुद्ध पक्ष को न्यूनतम सम्मान देते हैं जिस पर गम्भीरता से विचार करना उनका उद्देश्य नहीं।

आलोचना के माध्यम, से आचार्य शुक्ल साहित्य की, कविता के विशेष सन्दर्भ में, अवधारणा से सामान्य जन को परिचित कराते हैं। उनका मानना है कि कविता का सम्बन्ध मनुष्य के हृदय में स्थित भावों या मनोविकारों से है जो उनका परिष्कार करते हुए जगत् के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्धों की रक्षा और निर्वाह करती है। वस्तुतः रामचन्द्र शुक्ल यह मानते हैं कि यदि कोई मनुष्य किसी विशेष भाव की अनुभूति में एकान्तिक रूप से डूबा रहता है, और अन्य भावों की अनुभूति ही नहीं कर पाता, वह पूर्ण पुरुष नहीं हो सकता।⁷ वस्तुतः आचार्य शुक्ल भाव परिष्कार की आवश्यकता को रेखांकित करने के माध्यम से संस्कृत काव्य शास्त्र की आत्मवादी परम्परा से स्वयं को अलग कर लेते हैं।

भाव परिष्कार के समानान्तर आचार्य शुक्ल साहित्य में आध्यात्मिकता

को अस्वीकार करते हैं क्योंकि वे मूल्यहीन भाववाद का समर्थन नहीं करते। समस्त भावों के उचित सामंजस्य के प्रति अपनी आस्था रखने वाले आचार्य शुक्ल वस्तुतः इसे ही भाव की, पवित्रभूमि स्वीकार करते हैं, उसे ही कविता स्वीकार करते हैं।

छायावादी कविता के निःस्यन्द रहस्यवाद की अवधारणा भी आचार्य शुक्ल की विचारधारा के विपरीत थी। कबीर से लेकर टैगोर तक छायावाद की पृष्ठभूमि में निर्मित साहित्यिक कृतियों के प्रति आचार्य शुक्ल का स्थापित दृष्टिकोण था कि यह वाद अर्थभूमि का संकोच करता है, परिणामस्वरूप जीवन जगत् के विविध मार्मिक पक्षों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाती। पुनः यही छायावाद जब प्रगतिवादी साहित्य सर्जना की ओर अग्रसर हुआ तब उसका स्वागत करते हुए शुक्ल जी ने उसका गौरव भी किया। ध्यातव्य है कि आलोचक नामवर सिंह ने आचार्य शुक्ल के साहित्य सिद्धान्त को स्वयं छायावाद से प्रभावित बताते हुए लिखा— “छायावाद युग के पुरोधा समीक्षक आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धान्तों के निर्माण में भी छायावाद का बहुत अधिक हाथ है।”⁸ किन्तु निष्पक्ष दृष्टि यही कहती है कि नवीन सिद्धान्त की स्थापना में पुरातन सिद्धान्त का उल्लेख होगा ही, यह आश्चर्यजनक नहीं।

आचार्य शुक्ल का साहित्यिक आलोचना का दृष्टिकोण सामाजिक आदर्शों के प्रति भी प्रभावी है जहां वे वर्णाश्रम धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा हेतु आग्रही हैं। तुलसीदास पर लिखी अपनी पुस्तक में वे अपने समाज सम्बन्धी आदर्श को अभिव्यक्त करते हुए ऐसी वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन करते हैं, जो कभी इतिहास का अंग नहीं रही। तभी वे प्रगतिशील भावधारा के समर्थक रह सके।

वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति अपने दृष्टिकोण को लेकर आचार्य शुक्ल पर आक्षेप भले ही लगे हों, किन्तु उन्होंने उस दृष्टि से हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन विवेचन नहीं किया। उनकी भाव समर्थक काव्य दृष्टि ने उनकी निजी मान्यताओं को आलोचना प्रक्रिया से दूर रखा। अस्तु।

रामचंद्र शुक्ल जी के कुछ आग्रह हैं, कुछ मान्यताएँ हैं जो एक दूसरे

से सम्बद्ध भी हैं, और असम्बद्ध भी। उनका मूल कार्यक्षेत्र, साहित्य की आलोचना है, अन्य शेष कार्य परिधि पर हैं। परिधि के चिन्तन को वे साहित्य के चिन्तन पर नहीं थोपते। आचार्य शुक्ल की आलोचना सम्बन्धी विभिन्न मान्यताएँ उनके सैद्धान्तिक लेखन में सूत्रबद्ध हुई हैं और उनके व्यावहारिक लेखन से निःसृत हुई हैं। आमतौर पर आलोचक का सिद्धान्त पक्ष रचना के विश्लेषण व्यवहार में पीछे छूट जाता है या उसके व्यावहारिक विश्लेषण में सिद्धान्त निरर्थक साबित होते जाते हैं – ऐसा द्वैत शुक्ल जी की आलोचना का आधार नहीं।

आचार्य शुक्ल ने महत्वपूर्ण सिद्धान्त को तभी काम में लिया, जब उसकी व्यावहारिक उपयोगिता हो। सिद्धान्त और व्यवहार की एकता समकालीन आलोचना की बृहद् समस्या है किन्तु आचार्य इस समस्या के शिकार नहीं हुए। हाँ, आचार्य शुक्ल के बाद यह समस्या “समस्या” बनी हुई है। कारण, व्यवहार में लगे हुए आलोचक चिन्तन कहीं और से ले लेते हैं या उसे मानकर चलते हैं जबकि सैद्धांतिक चिन्तन में रत विद्वान व्यावहारिक आलोचना को हेय समझते हैं, जिससे कालांतर में उनकी संवेदनशीलता विनष्ट हो जाती है।

जो भी हो, आचार्य शुक्ल समकालीन आलोचना के सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने आलोचना को नवीन रूप प्रदान किया। यद्यपि उनकी परम्परा की आलोचक प्रवृत्ति न्यूनतम रूप में शेष है तथापि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आलोचना का कार्य अनवरत है, यह संतोष का विषय है।

सहायक ग्रन्थावली

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (का०ना०प्र० सभा वाराणसी वि०सं० 2003)
2. रामचन्द्र शुक्ल – मलयज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1987,
3. कविता के नए प्रतिमान – नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1974
4. चिन्तामणि – रामचन्द्र शुक्ल
5. छायावाद – डॉ० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979,
6. हिन्दी आलोचना – विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

संदर्भ संकेत

1. डॉ० राम विलास शर्मा –आचार्य शुक्ल और हिन्दी आलोचना (भूमिका)
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 525
3. चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृ० 156
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 565
5. रामचन्द्र शुक्ल— मलयज, पृ० 25
6. कविता के नए प्रतिमान—पृ० 32,
7. चिन्तामणि भाग – 1, पृष्ठ 67
8. छायावाद—पृ० 154–155

संत कवि – सुंदरदास और उनकी कविता

मनोज कुमार शुक्ल*

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल स्वर्णयुग कहा जाता है। इसे स्वर्णयुग कहलाने में भक्ति आन्दोलन का बहुत योगदान है। भक्ति आन्दोलन संत काव्यधारा, प्रेम काव्यधारा, राम काव्यधारा और कृष्ण काव्यधारा का सम्मिलित रूप है। भक्ति आन्दोलन को प्रारम्भ करने का श्रेय संत काव्यधारा को ही जाता है। भक्तिकाल की विशम राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में आशा की ज्योति बिखेरने का कार्य संत काव्यधारा के कवियों ने किया। उन्होंने तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं को अपने जीवन के व्यापक अनुभव के आधार पर जनसामान्य के लिए बोधगम्य बनाया।

संत शब्द का प्रयोग बुद्धिमान, पवित्रात्मा, परोपकारी व सज्जन व्यक्ति के लिए किया जाता है। संत शब्द उस शुद्ध अस्तित्व का बोधक है जो सदा एकरस तथा अविकृत भाव रूप में विद्यमान रहता है। इस शब्द के सत् रूप का, ब्रह्म या परमात्मा के लिए किया गया प्रयोग बहुधा वैदिक साहित्य में भी पाया जाता है। अतएव संत शब्द, उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने संत रूपी परमतत्त्व का अनुभव कर लिया हो। जो अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो। इस प्रकार जो सत्य का साक्षात्कार कर चुका हो वही संत है।

संत परम्परा का सूत्रपात स्वामी रामानन्द से माना जाता है। इन्हीं की शिष्य परम्परा में आगे चलकर संत सुंदरदास का आविर्भाव हुआ।

ज्ञान के महत्व को प्रतिपादित करने वाले संत सुन्दरदास जी एक कवि ही नहीं बल्कि एक महान संत, धार्मिक एवं समाज सुधारक थे। दादू दयाल के शिष्यों में दो सुन्दरदास हुए – बड़े सुन्दरदास और छोटे सुन्दरदास। छोटे सुन्दरदास ही ज्यादा प्रसिद्ध है। छोटे सुन्दरदास का जन्म जयपुर राज्य की पुरानी राजधानी द्यौसा नगर में संवत् 1658 चैत्र

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल पी0जी0 कॉलेज, बाराबंकी, उ0प्र0।

शुक्ल 9 को खंडेलवाल वैश्य परिवार में हुआ था। इनकी माता का नाम सती तथा पिता परमानन्द थे।¹ कहते हैं ये संत दादूदयाल के आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थे इसलिए पिता ने 6 वर्ष की अवस्था में ही दादूदयाल से इनको अपना शिष्य बनाने का आग्रह किया था जिसे संत दादूदयाल ने स्वीकार कर लिया।

सुन्दरदास जी बाल ब्रह्मचारी, बालकवि एवं बाल योगी थे। अपनी प्रखर प्रतिभा, भगवत प्रेम एवं उत्तम स्वभाव के कारण सबके प्रिय हो गये। संवत् 1664 में ये जगजीवनदास और रज्जब के साथ काशी चले गये। काशी में रहकर उन्होंने संस्कृत, हिन्दी व व्याकरण, कोष, शटशास्त्र, पुराण, वेदान्त का गहन अध्ययन किया। सांख्य योग, उपनिषद्, गीता, योग वशिष्ठ, शंकर भाष्य आदि का भलीभांति मनन किया। काशी में सुन्दरदास जी असीघाट के पास रहते थे।

संवत् 1962 में वे अध्ययन समाप्त कर जयपुर राज्य के शेखावटी प्रान्तवर्ती फतेहपुर में आये और वहाँ निवास किया। लगभग 60 वर्ष की अवस्था तक सुन्दरदास फतेहपुर में ही रहे। फतेहपुर का नवाब अलिफ खाँ इनका बहुत सम्मान करता था। नवाब अलिफ खाँ स्वयं कवि था और उसने 77 ग्रन्थों की रचना की है।

संत सुन्दरदास कभी-कभी चमत्कार प्रदर्शन भी करते थे। एक बार नवाब अलिफ खाँ ने उनसे कोई चमत्कार दिखाने के लिए कहा तब सुन्दरदास ने कहा कि नवाब साहब आप जिस जजम पर बैठे हो उसे उठाकर देखो। नवाब ने जाजम का एक कोना उठाकर देखा तो उसका गढ़ और दूसरा कोना उठाकर देखा तो पूरा नगर दिखाई दिया। नवाब ने सुन्दरदास के पैर पकड़ लिए।²

इनका डील डौल बहुत अच्छा, रंग गोरा और रूप बहुत सुन्दर था। स्वभाव अत्यंत कोमल और मृदुल था। ये बाल ब्रह्मचारी थे और स्त्री की चर्चा से सदा दूर रहते थे। निर्गुण पंथियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्यकला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे।³ सुन्दरदास जी जितना अध्ययनशील थे उतना योगभ्यास भी किया करते थे। वे भ्रमणशील व्यक्ति भी थे। उन्होंने बिहार, बंगाल,

गुजरात, मालवा, बदरीनाथ आदि स्थानों का भ्रमण किया तथा अनेक भाषाओं—संस्कृत, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, फारसी आदि का ज्ञान प्राप्त किया।

संत सुन्दरदास की श्रद्धा रज्जब जी पर बहुत अधिक थी क्योंकि काशी प्रवास के दौरान रज्जब ने ही इनकी शिक्षा-दीक्षा, भोजन, पोषण सभी की व्यवस्था की। इसलिए वे जब तब रज्जब जी से मिलने सांगनेर (जयपुर) जाते थे। सं० 1746 में जब रज्जब जी से मिलने सांगनेर पहुँचे, वहाँ उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर वे इतने दुःखी हुए कि उसी वर्ष सांगनेर में ही कार्तिक शुक्ल 8 को इनकी भी मृत्यु हो गयी। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह पद्य प्रसिद्ध है —

“संवत सत्रस सै छीयाला, कातिक सुदी अष्टमी उजाला।

तीजै पहर भरस्पति बार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार।।”⁴

सुन्दरदास ने 42 ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें ‘ज्ञान समुद्र’ और ‘सुन्दर विलास’ अधिक प्रसिद्ध हैं। पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा सम्पादित ‘सुन्दर ग्रन्थावली’ (दो भाग) उनकी सभी रचनाओं का प्रामाणिक संकलन है। उनकी रचनाओं में भक्ति, योग साधना और नीति को प्रधान स्थान प्राप्त हुआ है। शृंगार रस की रचनाओं के वे कट्टर विरोधी थे। केषव की रसिक प्रिया, नंददास की रसमंजरी और सुंदर कविराय कृत सुंदर शृंगार की निंदा में उन्होंने निम्न छंद लिखा है —

रसिक प्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जानि।

चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि।।

बिषै बनाई आनि लगत विषयिन कौं प्यारी।

जागै मदन प्रचंड, सराहै नख शिब नारी।।

ज्यौं रोगी मिष्ठान पाइ रोगहि बिस्तारै।

सुन्दर यह गति होइ जुतो रसिक प्रिया धारै।।⁵

निर्गुण संत कवियों में सुन्दरदास सर्वाधिक शास्त्रज्ञ एवं सुशिक्षित थे। सुशिक्षित होने के कारण उनकी कविता कलात्मकता से युक्त और

भाषा परिमार्जित है। निर्गुण संतों ने गेयपद और दोहे ही लिखे हैं। सुंदरदास ने कवित्त और सवैये भी रचे हैं। उनकी काव्य भाषा में अलंकारों का प्रयोग खूब हुआ है। निर्गुण साधना और भक्ति के अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक व्यवहार, लोकनीति और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के आचार व्यवहार पर भी उक्तियाँ कहीं हैं। जिस प्रकार रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि ठाकुर का ध्यान कवि समयों की निरर्थकता और उस समय की ऊलजलूल तुकबंदी की ओर गया था, उसी प्रकार ठाकुर से बहुत पहले सुन्दर का ध्यान भी आकृष्ट हुआ था –

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की बुद्धि होय,
ना तौ मुख मौन, गहि चुप होय रहिए।
जोरिए तो तब जब जोरिबे की रीति जानै,
तुक छंद अरथ अनूप जायें लहिए।।
गाइए तौ तब जब गाइबे को कंठ होय,
श्रवण के सुनत ही मनै जाय गहिए।
तुक भंग छंद भंग अरथ मिलै न कछु,
सुन्दर कहत ऐसी बानी नहि कहिए।।⁶

प्रायः सन्त कवियों के काव्य का कलापक्ष अपरिपक्व बताया जाता है किन्तु सुन्दरदास इसके अपवाद हैं। इनकी वाणी में कुछ ऐसी शक्ति है कि ये साधारण बात को भी प्रभावात्पादक बना देते हैं। जैसे –

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो, पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै, तन धूप समै जु पंचागिनि बारी।।
भूख सहै रहि रूख तरे पर, सुन्दरदास सहै दुख भारी।
डासन छाँड़ि के कौसन ऊपर मारि पै आस न मारी।।⁷

इस प्रकार हम देखते हैं कि संत सुंदरदास बहुत बड़े पंडित थे। ये सन्तमत के अन्य कवियों की भाँति साधारण और सरल कविता करने वाले नहीं थे। इनकी रचनाओं में काव्यशास्त्र का पूर्ण ज्ञान है। इनकी प्रसिद्धि

का अनुमान हम केवल इस बात से लगा सकते हैं कि सुन्दरदास, दादूदयाल के आयु में सबसे छोटे शिष्य थे, पर प्रसिद्धि में सबसे बड़े। इनके शिष्यों की पाँच गदिदयाँ कही जाती हैं जो फतेहपुर और राजस्थान में हैं। इनके पाँच शिष्य प्रसिद्ध हैं – 1. टिकैतदास, 2. श्यामदास, 3. दामोदरदास, 4. निर्मलदास, 5. नारायणदास।

संदर्भ ग्रन्थ

- हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास (प्रथम खण्ड) – डॉ० कुसुम राय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2019, पृ०सं० 131
- विकिपीडिया (आनलाइन मंच)
- हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2019, पृ० सं० 56
- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ० रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, 2010, पृ०सं० 267
- हिन्दी साहित्य का इतिहास – सं० डॉ० नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2011, पृ० सं० 129
- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ० बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ०सं० 97
- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड) – डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, 2015, पृ० सं० 164

बुद्ध का नीतिशास्त्र

डॉ० ज्योति वर्मा*

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में संपूर्ण विश्व दर्शन के नए क्षितिज स्पर्श कर रहा है। चीन में कन्यूशियस और लाओत्से, ईरान में जरथुस्त्र, यूनान में पाइथगोरस नए तर्क गढ़ रहे थे तो भारत में महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध वैदिक दर्शन को नया आयाम देने में लगे थे। गौतम बुद्ध ने बताया कि जन्म से लेकर मृत्यु तक संपूर्ण जीवन दुःखमय है। मृत्यु भी दुःख का अंत नहीं है, बल्कि नए दुःख का आरम्भ है, क्योंकि मृत्यु के बाद भी पुनर्जन्म होता है। उनका मानना था कि प्राणी की इच्छा अपूर्ण रहती है तो पुनर्जन्म लेना पड़ता है। गौतम बुद्ध अनात्मवादी और अनीश्वरवादी तो थे, किंतु भौतिकवादी नहीं थे। उनका मत है कि सृष्टि में जो कुछ भी है वह सब क्षणिक है, प्रतिक्षण परिवर्तनशील हैं द्वितीय आर्य सत्य है कि प्रत्येक कार्य का कारण अवश्य होता है, जिसे गौतम बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद कहा। इस दुःख के कारण सिद्धांत को द्वादश निदान चक्र भी कहा जाता है। इस दुःख का मूलभूत कारण अविद्या है। अविद्या से संस्कार, या पूर्व में किए गए कर्मों की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप, नामरूप से शडायतन, शडायतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जाति, जाति या जन्म से जरा-मरण का दुःख भोगना पड़ता है।

भारत के सर्वांगीण विकास में बौद्ध नीतिशास्त्र के मूल्यों की महत्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रासंगिकता आवश्यक हो सकती है। जिस प्रकार एक-एक बूंद करके घड़ा भर जाता है और एक-एक घड़े से तालाब, उसी प्रकार एक-एक व्यक्ति से समाज बनता है और एक-एक समाज से देश का निर्माण होता है। इस कथन का स्पष्ट अर्थ यह होता है कि व्यक्ति राष्ट्र के निर्माण एवं विकास में एक महत्वपूर्ण इकाई होता है। जिस प्रकार से एक भवन के निर्माण में ईंटों का मजबूत और पक्की होना महत्वपूर्ण होता है,

* एस० प्र०/विभागाध्यक्ष (संस्कृत), बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

उसी प्रकार किसी भी देश को विकसित एवं समृद्ध होना उसके नागरिकों के चरित्र, निष्ठा, कर्तव्यवरायणता, इच्छाशक्ति एवं उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। धम्मपद के अन्तर्गत प्रतिपादित नैतिक एवं मानवीय मूल्य नागरिकों को सही दिशा एवं दशा प्रदान कर सकते हैं, यदि नागरिकों में उनके अनुशीलन की इच्छा हो। उस स्थिति में हम अपने समाज और देश का सर्वांगीण विकास कर सकेंगे।

भारतीय चिंतन परम्परा में नैतिक मूल्यों का विशेष स्थान रहा है। इस परम्परा में जीवन मूल्यों का विकास ऋग्वेद में दृष्टिगोचर होता है। उसके बाद उपनिषद्काल में इनका विकास पाया जाता है। श्रमण युग में विशेषकर महावीर और बुद्ध के युग में नैतिक मूल्यों का पूर्ण विकास दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध चिंतन परम्परा में धम्मपद में वर्णित जीवन सम्बन्धी नैतिक मूल्य अद्वितीय एवं अतुलनीय है। इस परम्परा में धर्म और दर्शन का समान रूप से विकास हुआ है।

धम्मपद पालि साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ रत्न है। धम्मपद एक ऐसा ग्रंथ है, जिसकी प्रत्येक गाथा में बौद्ध धर्म का सार भरा हुआ है। बौद्ध धर्म में इसका उसी प्रकार प्रचार है, जिस प्रकार हिन्दुओं में गीता, ईसाईयों में बाइबिल तथा मुस्लिमों में कुरान का महत्व है। धम्मपद में कुल 423 गाथाएँ हैं, जिन्हें तथागत बुद्ध ने बुद्धतत्त्व की प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण पर्यन्त समय-समय पर भिक्षुओं के द्वारा उपस्थित समस्याओं के समाधान स्वरूप उपस्थित की हैं। इन गाथाओं को 26 वर्गों में निबद्ध किया गया है। जिस प्रकार चीनी का एक कण भी मिठास से भरा होता है, उसी प्रकार बुद्ध की प्रत्येक शिक्षा एवं उपदेश व्यक्ति को मूल्यपरक जीवन जीने की राह दिखाते हैं, जीवन को सुन्दरता से जीने की कला सिखाते हैं मनुष्य को सभी सांसारिक समस्याओं से विचलित होने से रोककर चट्टान के सदृश सुदृढ़ बनाते हैं। धम्मपद संपूर्ण बौद्ध दर्शन का निचोड़ है। इसे जीवन में उतार कर स्वयं लोक एवं लोकोत्तर सुख एवं शांति की प्राप्ति की जा सकती है तथा अपने आचरण और ज्ञान के द्वारा अनन्त प्राणियों का कल्याण किया जा सकता है।

धम्मपद में वर्णित जीवन मूल्य:-

जैसा कि इसके नाम 'धम्मपद' से ही ज्ञात होता है कि यह मूल्यों का मार्ग है। इसके अन्य अर्थ—'सत्य का मार्ग', 'धर्म के पद', 'धर्म का मार्ग', 'धर्म के छन्द या 'सत्य के शब्द' ये सब धम्मपद के ही पर्याय हैं। यह ग्रन्थ विशुद्ध रूप से नीतिशास्त्र अथवा नैतिक मूल्यों का ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थ में व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी एवं जीवन को मूल्य परक बनाने वाली, बुद्ध की सार्वभौमिक, सार्वकालिक, देशनाओं का अर्थपूर्ण संग्रह है। बुद्ध का नीतिशास्त्र, उसमें वर्णित जीवन मूल्य समस्त मानव जाति के लिये हैं। और वे मूल्य देश काल की सीमा से परे हैं। बुद्ध के लिये समस्त मानव जाति एक है। उनमें जाति, धर्म लिंग और निवास स्थान की दृष्टि से भेद नहीं किया जा सकता है। बुद्ध कहते हैं, " कोई जाति से वृषल (नीच) नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण होता है। कर्म से कोई वृषल होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।¹ बुद्ध ने अनुभव किया था कि उनके युग में समाज एवं मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के मार्ग में वर्ण-व्यवस्था बहुत बड़ा व्यवधान थी, जिसका बुद्ध ने प्रज्ञा और नैतिकता की कसौटी पर कसकर विरोध किया। बुद्ध ने मूल्यों के मार्ग में आने वाले व्यवधान को समाप्त करने के लिये अपने धर्म के दरवाजे सभी वर्णों और जातियों के लोगों के लिये खोल दिये। वर्ण एवं जाति के आधार पर व्यावहारिक और समाजिक जीवन में व्यक्ति के साथ कोई भेद नहीं होता जिसके परिणाम स्वरूप बौद्ध धर्म में समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और न्याय के मूल्यों की स्थापना हो सकी। धम्मपद में वर्णित मूल्य सभी व्यक्तियों, चाहे वे स्त्री हो अथवा पुरुष हो, सभी के लिये उपयोगी हैं। उन मूल्यों का अनुशीलन करके प्रत्येक व्यक्ति, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय करता हुआ, दुःखों से निवृत्ति कर निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है।

मनुष्य को मनुष्य बनने और जीवन के साध्यों की प्राप्ति के लिये राग, द्वेष, से रहित होकर सदाचरण का पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है। धम्मपद के यमक वर्गों में कहा है कि राग, द्वेष आदि मलों से युक्त, सत्य तथा संयम से रहित व्यक्ति सत्य मार्ग का अधिकारी नहीं हो सकता है।² अधिकारी व्यक्ति का वर्णन करते हुये तथागत कहते हैं— शीलवान,

सदाचारी, संयमशील, सत्यवादी, सार को सार और असार को असार समझने वाले सच्चे संकल्पों में संलग्न शीलवान मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है।³ चंदन, तगर या चमेली की सुगन्ध हवा के विपरीत नहीं जाती, किन्तु सज्जनों की सुगन्ध हवा की उल्टी दिशा में भी बहती है ; अर्थात् सत् पुरुष सभी दिशाओं को सुगन्धित करता है।⁴ व्यक्ति का जीवन बहुत छोटा है। यदि इस छोटे से समय में हम स्वार्थ को त्याग कर परार्थ में लग जाये तो अपना हित तो सम्पन्न होगा ही अन्य असंख्य सत्त्वों के आप चहेते भी बन जायेंगे। सौ वर्ष तक जीवन की कामना करने वाले मनुष्यों के लिये बुद्ध कहते हैं— जीवन एक कहानी के समान है। कहानी कितनी लम्बी है, इसका कोई मतलब नहीं। वरन् कहानी कितनी अच्छी है, प्रेरणादायक है, विचारणीय है, यह महत्वपूर्ण है। अतः जीवन की दीर्घता पर ध्यान न देकर उसकी सार्थकता पर व्यक्ति को ध्यान देना चाहिये। शीलवान ध्यानी व्यक्ति का एक दिन, दुराचारी के सौ दिन के जीवन से श्रेष्ठ होता है।⁵ मनुष्य विवेकशील प्राणी है। सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। पशु-पक्षी आदि जीवन अपने भूत भविष्य के बारे में सोचने की क्षमता नहीं रखते। अतः वे न तो कोई पाप करते हैं न ही किसी का बहुत बड़ा हित कर सकते हैं। मनुष्य अपने विवेक से महान हित साधनों के साथ-साथ भयंकर अहित भी कर सकता है। अतः उसे अपने विवेक को सदाचरण में लगाना चाहिये। सौमनस्य एवं सौहार्द बने, इसके लिये सम्यक वाणी के संदर्भ में बुद्ध कहते हैं— मनुष्य को अपने व्यवहार में हमेशा प्रिय वचन बोलने चाहिए। प्रिय वचन बोलने में दरिद्रता नहीं बरतनी चाहिये। एक भी अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। क्योंकि सभी प्राणी बुद्ध स्वरूप हैं। उनमें भी वही दिल है जो हममें है। जैसे हम दूसरों से अपेक्षा करते हैं, वैसे ही हमें भी दूसरों को देना चाहिये। व्यर्थ में वाक् शक्ति का क्षय नहीं करना चाहिये। मौन विश्व मैत्री की पहली कड़ी है। व्यर्थ पदों से युक्त हजारों वाक्यों से भी सार्थक एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति मिलती है।⁶

वैदिक परम्परा से लेकर जितने भी प्राच्य धर्म एवं दर्शनों की स्थापना हुई, वह मनुष्य के ऐकान्तिक सुख के लिये हुई है। कैसे दुःख से निवृत्त होकर सुख की प्राप्ति की जा सकती है। सभी धर्म दर्शनों की अपनी विचार

धाराये हैं, अपनी परम्परा एवं पन्थ हैं। उसकी साधना पद्धति है। और वे उसके अनुरूप चलते हैं। बौद्धेतर परम्परा में लगभग सभी धर्म ईश्वर का साक्षात्कार करना जीवन का परम उद्देश्य मानते हैं। तथा ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान को जीवन का उद्देश्य मानते हैं। तथा उसे ही दुःख की निवृत्ति का मार्ग बताते हैं। किन्तु बुद्ध ने इसके विपरीत सुख की बात न करके दुःख को आर्य सत्य के रूप में स्थापित किया। दुःख के अस्तित्व की स्वीकृति, उसके कारणों की खोज करने के उपरान्त दुःख के नाश करने के उपाय बताकर उन्होंने अपने धर्म की आधार शिला सम्यक अष्टांगिक मार्ग पर रखी। उन्होंने धर्म के स्थान पर धम्म का अविष्कार किया। बुद्ध का धम्म इन अर्थों में एक अविष्कार या एक खोज है क्योंकि यह पृथ्वी पर मानवीय जीवन के गम्भीर अध्ययन का परिणाम है। जिन स्वाभाविक प्रवृत्तियों को लेकर मनुष्य ने जन्म लिया है, उन्हें समझ लेने का परिणाम है। इस अभिनव धम्म का विस्तार प्रज्ञा—शील करुणा—मैत्री से होता है न कि मंत्र तंत्र या पूजा पाठ से। इसीलिये बौद्ध दर्शन के नीतिशास्त्र में ईश्वर और आत्मा के लिये तनिक भी स्थान नहीं है। संपूर्ण बौद्ध नीतिशास्त्र कुशल कर्मों पर ही आधारित है। बुद्ध जीवन पर्यन्त जिस धर्म का उपदेश करते रहे, उसमें सभी बातें कुशल कर्मों से संबन्धित ही थी। उनके धर्म और दर्शन में कोई रहस्य नहीं है। उन्होंने मनुष्य के जीवन को मूल्यपरक बनाने के लिये जो बातें कहीं उन्हें साधारण से साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी समझ सकता है। कुशल कर्मों की परिभाषा बताते हुये बुद्ध अपनी देशना में कहते हैं⁷—

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।

सचित्तपरियोदमनं एतं बुद्धान सासनं।।

सभी तरह के पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध एवं नियंत्रित रखना, यही बुद्ध की शिक्षा है, यही बौद्ध दर्शन का अभिप्राय है। यह गाथा बौद्ध धर्म का सार है। देखने में सरल और सुबोध भी है। हर कोई इसका अर्थ समझ सकता है। किन्तु जीवन में उतारना उतना ही कठिन है। मनुष्य को ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना

चाहिये, जिसे दूसरों के द्वारा अपने प्रति करने पर हमें बुरा लगता हो। हमें वही कर्म करने चाहिये जो हमें सुखकर लगते हों और दूसरों को भी प्रिय लगें। प्रत्येक कर्म पहले चित्त में उत्पन्न होता है अतः चित्त का दमन कर, चित्त में पुण्यात्मक विचारों को पैदा करने का प्रयास व्यक्ति को करना चाहिये। बौद्ध दर्शन में चित्त के कुशल होने का प्रत्यक्ष और सकारात्मक प्रभाव कुशल कर्मों पर पड़ता है। अतः चित्त को साधने के लिये बुद्ध कहते हैं⁸—

फन्दनं चपलं चित्तं दूरक्खं .न्निवारयं

उजुं करोति मेधावीउसुकोरा व तेजनं।।

अर्थात् चित्त क्षणिक है, चंचल है। इसे रोके रखना कठिन है। ऐसे चित्त को मेधावी पुरुष उसी प्रकार सरल, सीधा बनाता है, जिस प्रकार बाणकार बाण को। यहाँ बुद्ध सिर्फ चित्त का स्वभाव बतला रहे हैं। मन क्षणिक है, पानी के बबूले की तरह अभी है अगले पल नहीं है। करना कुछ भी नहीं है सिर्फ मन के स्वभाव को पहचानना है। उसकी चंचलता, अस्थिरता को पहचानना है। उसके तिरछे या सीधे होने की गति को पहचानना है। जैसे बाणकार बाण को सीधा करता है। क्योंकि वह जानता है कि तिरछा बाण निशाने पर नहीं पहुँचता। उसी प्रकार मन तिरछा है या सीधा मन सबका अपना है उसे उसी रूप में देख लेने से वह तत्क्षण सरल हो जाता है। जैसे कोई झूठ बोलता है वह कहे कि हमें सत्य बोलना सीखना है तो उसे सच की कला कैसे सिखाई जा सकती है? सिर्फ यही कि वह अपने झूठ को स्वयं पहचाने। सत्य स्वयं ही प्रकट हो जायेगा। उसी प्रकार मन की गति है। बुद्धि ने एक अभिनव दर्शन दिया है संसार को जाग कर तथ्यों को देखने का। बुद्ध ने इतना ही सिखाया है कि जीवन को झूठ से, छिपाओ मत, प्रकट करो। अपने क्रोध को स्वीकार कर लो, अपनी घृणा को, ईर्ष्या को, द्वेष को, जलन को स्वीकार कर लो तत्क्षण पाओगे कि तुम्हारा चित्त सरल हो गया।

बुद्ध ने कहा है कि यदि दुःख है जीवन में तो उसका कारण स्वयं मनुष्य है। राग द्वेष, मोह, ईर्ष्या, लालच आदि क्लेशों से प्रेरित कर्म ही दुःख

का कारण बनते हैं। अतः दुःख को समझों, दुःख के कारणों को समझों। दुःख यदि किसी कारण से उत्पन्न हो रहा है, तो उसका नाश किया जा सकता है। क्योंकि वह आगन्तुक है, किसी हेतु या कारण से उत्पन्न है। तृष्णा रहित, राग रहित, द्वेष रहित होने का प्रयास ही सम्यक मार्ग है। अतः अष्टांगिक मार्ग को समझ कर जीवन में उतारने से ही दुःख की निवृत्ति हो सकती है। दुःख से निवृत्ति ही निर्वाण है। निर्वाण का अर्थ तृष्णा एवं क्लेश से रहित होकर जीना है। यही बुद्ध का संदेश है, जो चार आर्य सत्य के नाम से जाना जाता है। बौद्ध धर्म की नैतिक परम्परा में पंचशील का अत्यधिक महत्व है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य भाषण एवं नशा आदि से व्यक्ति का मानसिक पतन होता है। अत्याचार एवं शोषण की प्रवृत्ति का जन्म होता है। प्रत्येक प्राणी को जीवन प्रिय होता है। पीड़ा सबको होती है। दण्ड से सभी डरते हैं। सभी में जीवन शक्ति है, जीने की लालसा है, सुख दुःख की वेदना होती है।⁹ हम देखते हैं एक छोटा सा कीड़ा भी पकड़े जाने पर, भागने की चेष्टा करता है, भरसक अपना बचाव करता है। क्योंकि अपना जीवन उसे भी प्यारा है। चाटें उसे भी दुःख देती हैं। जब शरीर के किसी अंग में मामूली सी चोट पर दर्द का अनुभव होता है तो, कैसे हम प्राणी की हत्या कर उसके मांस का सेवन कर सकते हैं? अतः सभी को अपने जैसा समझ कर न किसी को मारे और न मारने दें।¹⁰ अहिंसा का पथ ही करुणा का पथ है। बुद्ध इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि असत्य एवं झूठ बोलना मनुष्य के लिये अत्यधिक हानिकारक और खतरनाक है। इसलिये झूठ बोलने से विरत रहने की प्रतिज्ञा पंचशील में करनी पड़ती है। झूठ बोलने से हानि का उपदेश देते हुये बुद्ध कहते हैं, जितनी हानि शत्रु, शत्रु की या वैरी, वैरी की करता है, उससे अधिक हानि बुराई व झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।¹⁰ झूठ बोलने वाला व्यक्ति कोई भी पाप कर सकता है।¹¹ बुद्ध कहते हैं असत्यवादी नरक जाता है और वह भी जो असत् कार्य करके भी उसे मिथ्या सिद्ध करता है दोनों की समान गति होती है।¹² इसलिये बुद्ध ने सत्य भाषण करने वाले अकर्कश, सार्थक, किसी को पीड़ा न देने वाली वाणी बोलने वाले को ब्राह्मण पद की संज्ञा से अभिहित किया है। अन्य धर्म ग्रन्थों में विशेष परिस्थिति में झूठ बोलने को गलत नहीं

कहा इस प्रश्न पर कि क्या आवश्यक झूठ बोलने का औचित्य स्वीकार किया जा सकता है? क्या विशेष परिस्थिति में झूठ बोला जा सकता है इस के उत्तर में बुद्ध समझौता नहीं करते। बौद्ध धर्म का एक ही आदेश है विवेक के साथ सदैव सत्य बोलो। किसी भी परिस्थिति में मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिये। बौद्ध धर्म चेतना को महत्व देता है। चेतना के स्तर पर किया गया कार्य कभी असत्य नहीं हो सकता। विश्वासघात, बदनामी, खुशामद, झूठी गवाही देना ये सभी मिथ्या भाषण के ही पर्याय हैं। ढोंग-चिंतन के स्तर पर, बोलने के स्तर पर और कार्य करने के स्तर पर जो बेमेल है, वह भी एक प्रकार का झूठ ही बौद्ध धर्म में माना गया है।¹⁴ झूठ अति नीच कर्म है इसलिये तथागत ने अपने दर्शन में झूठ से विरत रहने का उपदेश किया है। झूठ बोलना यथार्थ में एक मानसिक विकृति है, जो मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है।

आधुनिक समाज में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के पतन और अवमूल्यन का मुख्य कारण शराब एवं परस्त्रीगमन है। अत्यधिक लोभ चोरी की मानसिकता को पैदा करता है। इसकी रोकथाम के लिये बुद्ध ने शील एवं सदाचार का प्रतिपादन करते हुये ब्रह्मचर्य के अनुशीलन एवं मादक द्रव्यों से विरत रहने का प्रावधान किया है। आज भारतीय समाज में क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, कंजूसी, नशाखोरी आदि अनेक दुर्गुण व्याप्त हैं, जिससे मनुष्य और समाज का कल्याण नहीं हो पा रहा है। इसके लिए यह परमावश्यक है कि मनुष्य और भारत का बौद्ध नीतिशास्त्र की मूल्य योजना के अनुसार कर्म करे, तभी सम्पूर्ण समाज में मूल्यों की स्थापना हो पायेगी और चारों ओर सुख-शान्ति एवं अहिंसापूर्ण वातावरण में समाज और देश सशक्त, धार्मिक एवं नैतिक बन सकेगा। इन स्थिति में सम्पूर्ण भारत में प्रज्ञा, शील, मैत्री और करुणा की ध्वनि गुंजायमान होती रहेगी।

वस्तुतः मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने का श्रेय उन उदात्त जीवन-मूल्यों को है, जिनके माध्यम से वह श्रेष्ठता को प्राप्त होता है। किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन वहाँ के जन-समाज के आचरणगत मूल्यों के आधार पर होता है। प्रत्येक राष्ट्र की एक परम्परागत संस्कृति होती है, जिसका सृजन उन मूल्यों के आधार पर होता है, जिन्हें वहाँ के महापुरुषों

ने अपने जीवन में अपनाया होता है। वस्तुतः उन्हीं मूल्यों के और उनके माध्यम से ही उनका चरित्र एवं व्यक्तित्वगौरवमय बनकर स्वर्णाक्षरों में अंकित हुआ है। तथागत बुद्ध पहले ऐसे महापुरुष हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति को गौरव प्रदान किया। वे मानव के रूप में जन्में, एक मानव के रूप में जीवन निर्वाह किया और महापरिनिर्वाण प्राप्त किया। उनका सम्पूर्ण जीवन चरित्र मनुष्य में यह विश्वास पैदा करता है कि मनुष्य स्वयं अपना स्वामी है, दूसरा कोई उसका मालिक नहीं है। वह स्वयं दीपक की तरह प्रज्ज्वलित होकर स्वयं को और अपने परिवेश को रोशन कर सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. सुत्त निकाय, 1/7/21, वसल सन्तु
2. धम्मपद, यमक वर्गो-9
3. धम्मपद, यमक वर्गो 10-12
4. पुफ वर्गो -11
5. सहस्स वर्गो-11
6. सहस्स वर्गो-1
7. बुद्धवर्गो-5
8. चित्त वर्गो-1
9. दण्डवर्गो-1,2,3,4 क्रोध वर्गो-5
10. चित्त वर्गो-10
11. सुत्त निकाय, वसल सुत्त
12. धम्मपद-निरय वर्गो-4,5
13. ब्राह्मण वर्गो-26
14. बुद्धवर्गो-5-7

भारत में बौद्ध धर्म के विकास में डॉ० आंबेडकर की भूमिका

डॉ० बृजेन्द्र सिंह बौद्ध*

शताब्दियों की गुलामी के बाद उत्तरी गोलार्द्ध पर जब नवीन भारत का उदय हुआ, तो उसका सारा वर्चस्व भगवान् बुद्ध के धर्मचक्र तथा सम्राट अशोक के चतुर्विक् धर्मघोष करने वाले सिंह स्तम्भों के माध्यम से प्रकट हुआ। बहुजन का हित और सुख आधुनिक प्रजातन्त्र के साथ मिला, अशोक की मानवीय व्यवस्था धर्म निरपेक्षता के साथ जुटी और भगवान् बुद्ध की अपरिमित मैत्री और समता का सिद्धान्त आधुनिक समाजवाद और अन्तर्राष्ट्रीय तटस्थ नीति के साथ समरस हो सका। स्वातन्त्र्य के प्रकाश के सम्पूर्ण भारतीय इतिहास का जो मन्थन हुआ, उससे जो एक नई सांस्कृतिक चेतना मिली, वह कैसे बुद्ध से अप्रभावित रह सकती थी।

पिछले 60 वर्षों में इस प्रकार का जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उद्बोधन खड़ा हो सका, उसके तत्व चिन्तक मनीषियों में महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायान, बाबा साहेब डॉ० भीमराव आंबेडकर इस देश के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेंगे। बाबा साहेब ने भगवान् बुद्ध के उस प्रकाश को उन करोड़ों लोगों तक पहुंचा दिया, जिन्होंने शताब्दियों तक अपने ही देश में अपनी झोपड़ी में अपने जीवन का भार ढोते हुए बिताया है तथा मानवीय श्रम और सेवा के पुरस्कार में दुत्कार, धिक्कार, अशिक्षा और दरिद्रता पायी है। यह बौद्ध धर्म का विकास है, जो शताब्दियों के बाद भारतीय समाज के शुभ एवं सशक्त परिवर्तन के लिए नई दिशा देता है। ऐसे ऐतिहासिक अवसर पर हम आप बुद्ध-पुत्रों का साभिवादन स्वागत करते हैं।

यह भी सत्य है कि परिस्थितियों की व्यापक जड़ता को तोड़ता शताब्दियों का उपेक्षित बहुजन समाज महान परिवर्तन के मार्ग पर सोत्साह चल पड़ा है। बाबा साहेब आंबेडकर ने स्वाभिमान का प्रकाश उन लोगों तक

* वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी,
मेल—dr.bsboundha1999@gmail.com

पहुंचा दिया, जिन्होंने शताब्दियों-शताब्दियों तक अपने ही देश में अपनी झोंपड़ी और अपने जीवन का भार ढोते हुए बिताया तथा मानवीय श्रम और सेवा के पुरस्कार में दुत्कार, धिक्कार, अशिक्षा, और दरिद्रता पाई, बाबा साहेब ने बौद्ध धर्म के विकास पुनर्जागरण के माध्यम से शताब्दियों के बाद सामाजिक क्रांति को नई दिशा दी है।

सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से यह युग बोधिसत्व बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर का है, यद्यपि इस तथ्य को राजनयिकों और बुद्धजीवियों द्वारा जाने-अनजाने अनेकों प्रकार से छिपाया जाता है। वास्तव में इस तथ्य को छिपाकर समाज की प्रधान समस्या को ही आंख से ओझल रखने का राष्ट्रीय अपराध किया जा रहा है। सामाजिक समस्याओं को यदि एक-एक शब्द में कहना चाहें, तो वह है—ब्राह्मणवाद। यह एक ऐसी व्यवस्था प्रस्तुत करता है, जिसकी रक्षा के लिए धर्म एक कवच है। वर्ण व्यवस्था वर्ग-विशेष के लाभ के लिए है। वर्ण व्यवस्था उसी का धार्मिक पोषण है वर्ण व्यवस्था के द्वारा एक ओर काम, सेवा और श्रमिकों वर्ग का मूल्य घटाया गया, और दूसरी ओर धन, धरती, शिक्षा, कला और संस्कृति का लाभ विशिष्ट वर्ग के लिए सुरक्षित कर लिया गया।

मानव इतिहास में पहली बार जिस पवित्र भूमि पर देव, कुल, वर्ण, जाति आदि की अपेक्षा मानव की श्रेष्ठता की घोषणा हुई, जहां मनुष्य ने यह जाना कि अपने समाज के भाग्य का विधाता वह स्वयं है और उसी पर बहुजन के हित एवं सुख का उत्तरदायित्व है, वहां पर आप सब कल्याण मित्रों का स्वागत करते हुए एक विशेष गौरव का अनुभव हो रहा है। गौरव इस बात का है कि जब इस विशाल देश में सामाजिक परिवर्तन के प्रायः सभी द्वार बन्द हो चुके हैं, प्राचीन सुधारवादी संस्थाएं समाप्त प्रायः हैं या प्रभावहीन हो चुकी हैं, पच्चीस वर्षों की स्वाधीन राजनीति भी जातिवाद एवं अभिजात वर्ग के स्वार्थ जाल में उत्तरोत्तर फंस कर भविष्य के लिए अविश्वसनीय होती जा रही है, इसके फलस्वरूप सभी ओर सामाजिक परिवर्तन की दिशाएं अवरुद्ध होती जा रही हैं, तो परिस्थितियां इस व्यापक जड़ता को तोड़कर शताब्दियों का उपेक्षित बहुजन समाज आज का एक

महान पुरुषार्थ परिवर्तन के मार्ग पर सोत्साह चल पड़ा है। हमें भली-भांति ज्ञात है कि समाज का यथास्थितिवादी वर्ग आज भी बहुत सशक्त है। अपने वर्गस्वार्थ एवं वर्ण प्रतिष्ठा की रक्षा में पहले से वह अधिक सचेत, कुशल एवं नवीनतम साधनों से सम्पन्न हो चुका है। इस स्थिति में यह भी स्पष्ट है कि उनके घेरे में रहकर उपेक्षित वर्ग का उनके सामने खड़ा होना है, दरिद्रता के अतिरिक्त भगवान् बुद्ध का क्रांतिकारी संदेश “नत्थि में सरणं अज्जं... ‘अत्ता हि अत्तनो नाथो’”।

इस भूमि पर जिस सद्धर्म का प्रवर्तन हुआ था, उसके चक्के को घुमाने वाला कोई मायापति नहीं था और न उसकी माया थी, वह था केवल मानव। वह लोक में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ इसलिए हो सका कि उसने अपने निजी अध्यवसाय एवं स्वतन्त्र प्रज्ञा से जगद्व्यापी दुःख के कारणों को जाना और उसके निरोध का मार्ग जनता को बताया। जिस समय उस महामानव ने अपने अनुभवी की घोषणा की, उस समय भी आज की ही तरह भीतर की धरती मिथ्या दृष्टियों और मिथ्या आडम्बरों से आक्रान्त थी। कार्तिक की पूर्णिमा के लगते ही तथागत ने मुट्ठी भर अनुयायियों को जिनकी संख्या केवल 60 थी, उन्हें बहुजन के हित एवं सुख के उद्देश्य से सद्धर्म के प्रचार के लिए सभी दिशाओं में भेज दिया। शास्ता के निर्देशानुसार किन्हीं दो व्यक्तियों को एक दिशा में नहीं जाना था। बुद्ध स्वयं भी एकांकी ही एक दिशा में चल पड़े थे—“मा द्वे एक अगमित्थ, अहं पि एकं गमिस्सामि”। महामानव की वह देशना कभी रूकी नहीं, उनके अनुयायियों की गति कहीं अवरुद्ध हुई नहीं।

इतिहास इसका साक्षी है कि बुद्ध के अनुयायियों को धर्म यात्रा को समुद्रों की उत्ताल तरंगे रोक नहीं सकीं, बियाबन जंगलों ने नहीं उलझाया, न ही हिंस्र पशुओं से अकीर्ण महाकान्तरों ने कभी भयभीत किया, पर्वतमालाओं के उच्चतम श्रृंगों ने कभी उनके पगडंडियों के पद चिन्ह तक नहीं मिटाए। अपने शास्ता का संदेश पाकर शताब्दियों—शताब्दियों तक जो शतशः सहस्रशः भारतीय सपूत सारी मनुष्य जाति की सेवा के लिए चल पड़े थे, उनके पास एक ही पाथेय था—‘सद्धर्म’ का प्रकाश पहुंचा देना। उनके

प्रकाश से जंगलों में रहने वाली विशाल जन-जातियों तक को एक उत्कृष्ट जीवन-दर्शन, एक प्रशस्त मानव संस्कृति प्राप्त हो सकी अपनी जन्म भूमि भारत लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक बुद्ध के प्रकाश से, बौद्धों के अदम्य उत्साह और विलक्षण प्रतिभा से आलौकित रही। उस परिस्थितियों में भी मनुष्य में आत्मरक्षा की प्रवृत्ति प्रबल बनी रहती है, विशेषकर जिस वर्ग के संस्कारों को इतिहास ने धार्मिक मान्यता प्रदान की हो। बात यह है कि सामाजिक व्यक्तित्व का भी यथा सम्भव एक अन्य निरपेक्ष अन्तर्जगत बन जाता है, जो विरोधी बाह्य परिस्थितियों में भी उसकी रक्षा के लिए काल्पनिकता के आधार पर धार्मिक और वैचारिक रक्षा-आवरण खड़ा कर देता है। ऐसा व्यक्तित्व स्वयं तो विरोधी द्वन्द्वों से पीड़ित एवं विकृत बना रहता है, किंतु अपने 'अहम्' की तुष्टि के लिए दूसरों के अस्तित्व को महत्व नहीं देता। वर्तमान हिन्दू जनमानस उसका एक सटीक उदाहरण है, जो आद्य शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त की एकता तथा श्रौतस्मार्त धर्मों की विषमता दोनों की एक साथ प्रतिष्ठा के बाद उत्तरोत्तर विकृत हो गया। ऐसी असामंजस्यपूर्ण जीवन-दृष्टि के बीच लोगों का ध्यान संभवतः उन असामाजिक मान्यताओं, प्रतिदिन की भेद एवं विषमतापूर्ण सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों की तरफ नहीं जाता, जो प्राचीनकाल से आज तक लगातार चली आ रही हैं और नये अनुबन्ध में भी अपने को जीवित रखती रही है। आज ऐसी सभी प्रवृत्तियों का सम्मिलित प्रयास एक है—सवर्णों के पुराने वर्गीय-नेतृत्व को परिवर्तित न होने देना और प्रजातन्त्र तथा समाजवाद का सम्भवतः सम्पूर्ण लाभ मुट्ठी वर्ग को होने का अवसर सुरक्षित रखना।

इस स्थिति में सामान्य जनता तक नई परिस्थितियों का लाभ पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि परम्परागत मानवीय मूल्यों में परिवर्तन हो। परिवर्तन न होने देने में प्रमुख कारण ब्राह्मणवादी दृष्टि है। सही आधुनिकता के लिए भी यह अभिशाप है किंतु इसकी सबसे बड़ी चोट पिछड़े वर्ग और शूद्र जातियों पर पड़ती है। यही "नव ब्राह्मणवाद" है, जो अपनी सारी पुरानी वर्ग चेतना एवं वर्ण चरित्र को कायम रखते हुए आधुनिकता का भी गलत लाभ उठाया है इस प्रकार ब्राह्मणवादी-आधुनिकता के परिवेश में समाज-सुधार के सारे कानून भी कुण्ठित होते जा रहे हैं।

ब्राह्मणवाद जीवन की वह प्रक्रिया है जो समाज के हर स्तर पर ऊँच—नीच का भेदभाव खड़ा करती है, जिससे नीचे से नीचतर और नीचतम अधिकाधिक पीड़ित किए जाते हैं और उच्च से उच्चतर और उच्चतम उत्तरोत्तर लाभान्वित होते रहते हैं। इस व्यवस्था को धर्म के माध्यम से शूद्रों के गले भी उतार दिया गया है, इसलिए उसने गम और पीड़ा को ही अपना 'स्वधर्म' स्वीकार कर लिया है। गीता की यह शिक्षा उनके गले उतर चुकी है कि स्वधर्म पालन में अपना विनाश होने दो, किंतु दूसरों के लिए निर्धारित धर्म (कर्म व्यवस्था) की आरंभ आंख उठाओ, वह तुम्हारे लिए भयंकर होगा। दासता के अभिशाप की यह चरम कोटि है। ब्राह्मणवादी धार्मिक सम्राज्यवाद की यही सुचिन्तित प्रक्रिया है, जो उनके धर्म, दर्शन और इतिहास की महत्वपूर्ण घृणित देन है।

बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर ने दलितों एवं पीड़ितों का प्रश्न उठा कर ब्राह्मणवाद को चुनौती दी, किंतु हृदय परिवर्तन की बकवास के अतिरिक्त हिन्दू समाज पर इसका कोई स्वास्थ्य पर प्रभाव नहीं पड़ा। स्वराज्य के साथ दलितों को जो कुछ सुविधा दी गयी, वह तो स्वराज्यवादियों की राजनीतिक विवशता थी, जो पूना में गांधी-आंबेडकर संधि के रूप में या अन्य समयों में प्रकट हो चुकी थी। स्वराज्य के आठ वर्षों के बाद डॉ० आंबेडकर ने अपने लाखों-लाख अनुयायियों के साथ भगवान बुद्ध की षरण में जाकर इस देश का एक महान समय अधिकांश विश्व भगवान बुद्ध के इस जम्बूद्वीप के प्रति श्रद्धावन्त हुआ। आज भी देश के पास वही एक ऐसी श्रेष्ठ मानवीय निधि है, जो आधुनिक संसार को भी आकृष्ट कर रही है। शताब्दियों की गुलामी के बाद उत्तरी गोलार्ध पर जब नवीन भारत का उदय हुआ, तो उसका सारा वर्चस्व भगवान बुद्ध के धर्मचक्र तथ सम्राट अशोक चतुर्विक् धर्म घोष करने वाले सिंहस्तम्भों के माध्यम से प्रकट हुआ। बहुजन का हित और सुख आधुनिक प्रजातंत्र के साथ मिला। अशोक की मानवीय व्यवस्था धर्म निरपेक्षता के साथ जुड़ी और भगवान बुद्ध की अपरिमित मैत्री और समता का सिद्धान्त आधुनिक समाजवाद और अन्तराष्ट्रीय तटस्थ नीति के साथ सम्पन्न हो सका। स्वातन्त्र्य के प्रकाश में सम्पूर्ण

भारतीय इतिहास का जो मन्थन हुआ, उसे जो एक नई सांस्कृतिक चेतना मिली, वह कैसे बुद्ध से अप्रभावित रह सकती थी?

ब्राह्मणवाद का जीवन दर्शन है शाश्वतवाद अर्थात् अपरिवर्तन—शीलता का सिद्धान्त जिसकी सामाजिक परिणति यथास्थितिवाद में हाती है “परम्परा से जो जैसा है, वैसा चलता रहे” यही उसका सनातन—धर्म है। उसी की पुष्टि के लिए धर्म के माध्यम से समाज में रूढ़िवाद एवं अंधविश्वासों को भी प्रोत्साहित किया गया है। इस कार्य में ब्राह्मणवाद अकेला नहीं है, उसका भरा-पूरा परिवार है। ईश्वरवाद, आत्मवाद, पुनर्जन्म, शब्द प्रामाण्य तथा वर्ण एवं जातिवाद उसके विशिष्ट सदस्य हैं। इन सबका एक ही लक्ष्य है—समाज और जीवन के क्षेत्र में नित्यता, स्थिरता तथा गतिहीनता को कायम रखना। इन सबका सामाजिक प्रतिफलन एक निश्चित दिशा में होता है—किसी भी प्रकार की परिवर्तनशीलता का विरोध और नवीन—दृष्टि को धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मान्यता न देना।

कुछ लोगों को यह आशा होती है कि ब्राह्मणवाद से अलग करके हिन्दू धर्म की स्वतन्त्र व्याख्या एवं व्यवस्था की जा सकती है। किन्तु यह सम्भव नहीं होगा। क्योंकि हिन्दू—धर्म ब्राह्मणवाद का पर्याय है। ब्राह्मणवाद के बिना हिन्दू धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती और जातिवाद के बिना ब्राह्मणवाद खड़ा नहीं जा सकता। इस प्रकार ब्राह्मणवाद, जातिवाद तथा हिन्दू धर्म ये तीनों एक ही जीवन—पद्धति को आदर्श मानते हैं।

पिछले दो सौ वर्षों में हिन्दू धर्म को उदार बनाने के उद्देश्य से इस देश में वेदवादी, वेदान्तवादी, संतवादी व राष्ट्रवादी दृष्टियों से अनेकानेक आंदोलन खड़े किए गए, किन्तु इन सबका लाभ सामान्य वर्ग को नहीं मिल सका। क्योंकि इन सभी सुधारवादी आंदोलनों को सीमा ब्राह्मणवाद था। उन सबकी अन्तः प्रेरणा स्वर्णीय परिवर्तन की थी, यानी ‘क’ वर्गीय, जो क—ख—ग—घ—ङ. के बीच में घूमता रहा, किन्तु वर्ग—स्वार्थ को तोड़कर “ङ” वर्गीय परिवर्तन करने की क्षमता उनमें नहीं थी। वास्तविकता यह है कि इन आंदोलनों में उस प्रकार क्रांति करने की क्षमता आ भी नहीं सकती थी, जिसका लक्ष्य मानवीय मूल्यों में परिवर्तन के लिए जिस प्रकार

के गतिशील जीवन दर्शन की आवश्यकता है, ब्राह्मणवाद उसका घोर विरोधी है।

कुछ उदारवादी लोगों का मत है कि नये युग में ब्राह्मणवाद समस्या के रूप में नहीं है। ऐसा विचार व्यक्त करते समय संकेत रहता है—उत्तरोत्तर विकसित होने वाले विज्ञान तथा विश्व के संदर्भ में व्यापक होने वाले मानवीय सम्बन्धों की ओर। इस बात में कुछ सत्यांश है, किंतु वे यह भूल जाते हैं कि जातिवाद का प्रतिपक्ष खड़ा है। डॉ० आंबेडकर ने जिस सद्धर्म का विकास किया, वह अपनी ही भूमि पर अपने ही पूर्वजों द्वारा उदभूत हुआ और पुष्पित एवं फलित हुआ था। संसार के अधिकांश भागों में जा कर इन्हीं भारतीय शाक्य—पुत्रों ने अपने शास्ता भगवान बुद्ध के संदेश को जन—जन में फैलाया, जिससे भारतीय संस्कृति को अन्तर्राष्ट्रीय गौरव मिला और भारतीयता को विश्व—मानवता के साथ जोड़ बैठा। इतना ही नहीं, इस ब्राह्मणवादी देश में मुट्ठी भर विशिष्ट जन के हित एवं सुख की जगह बहुजन का हित और सुख धर्म का लक्ष्य बना। इतिहास ने विभूतिमत्ता और देवत्व की प्रतिष्ठा की जगह मनुष्यता की श्रेष्ठता को स्वीकार किया। परम्परा और रूढ़ कर्मकाण्डों का स्थान स्वतन्त्र प्रज्ञा और सदाचार ने लिया। जैसे सारी नदियां समुद्र की विशालता में मिलकर अपना—अपना वर्ण और नाम खो देती और एक वर्ण और एक नाम की हो जाती है, उसी प्रकार भगवान बुद्ध के सद्धर्म की विशालता से सारा भारतीय समाज एक हो सका, इसकी संभावनाएं मुखरित हो उठी। इसी दिशा में अशोक और कनिष्क जैसे सम्राटों ने सारे भारत में यथा संभव समता, धर्म—निरपेक्षता एवं देश की अखंडता की स्थापना की। इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धारा को बीसवीं शताब्दी में डॉ० आंबेडकर ने सामान्य जनजीवन के साथ जोड़ दिया। आज ब्राह्मणवादी विलासिता और विषमता के हलाहल एवं कोलाहल में तथागत की करुणा और प्रज्ञापूर्ण वाणी शताब्दियों की उपेक्षित एवं पीड़ित जनता तक कैसे पहुंच पाती, यदि बाबा साहेब ने होते और यदि उन्होंने उसे करुणाकार बुद्ध के मार्ग पर चलाया न होता।

भारतवर्ष में बौद्ध धर्म ब्राह्मणवाद का प्रतिपक्ष इसलिए बना सका कि उसने ब्राह्मणवाद की सारी अमानवीय एवं अतार्किक मान्यताओं को खुली

चुनौती दी, जो उस समय सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक जगत में फैली थी। उन्होंने सभी क्षेत्रों में फैले विलासितावाद एवं अपरिवर्तनवादी दृष्टिकोण की आलोचना की। हजारों वर्ष पहले उन सारी प्रमुख समस्याओं पर बौद्धों ने विचार किया और उनके समाधान प्रस्तुत किए, जो आज भी असमाहित रहकर, भारतीय समाज को पीड़ित कर रही है।

बौद्धों ने सामाजिक एवं धार्मिक अन्याय का केवल विरोध ही नहीं किया, प्रत्युत: जीवन और दर्शन के प्रत्येक क्षेत्र एक ऐसा नया विकल्प प्रस्तुत किया, जिसने अपने को ब्राह्मणवादी परम्पराओं से अवधि स्वस्थ, श्रेष्ठ और मानवग्राही सिद्ध किया। पुरानी दुनिया में दर्शन, न्याय, साधना, कला और संस्कृति के क्षेत्र में बौद्धों का कोई सनी नहीं था। आज भी दुनिया में एशिया का जो आकर्षण है, वह बौद्ध धर्म, दर्शन और उसकी मानवीय संस्कृति ही है। डॉ० आंबेडकर ने इतिहास के गर्भ में छिपे हुए उस सारे एशिया और भारत के वैभव को एक साथ प्रकाश में ला दिया और उसका उत्तराधिकार बहुसंख्यक भारतीय जनता को देकर सांस्कृतिक उद्बोधन के माध्यम से इस देश में सामाजिक नवजागरण का सूत्रपात किया।

नई दुनिया में 'जातिवाद' का नैतिक या सांस्कृतिक मूल्य नहीं रह गया है। आज का सचेत भारतीय मन यद्यपि रूढ़ियों और परम्पराओं से घिरा है, किंतु उसकी नैतिकता को स्वीकार करने में उसे भी संकोच होने लगा है। ब्राह्मण धर्म विषमतापूर्ण आर्थिक व्यवस्था तथा सामाजिक ऊँच-नीच के आधार पर खड़ा किया गया है, अतः उससे लाभान्वित होने वाले वर्गों में अपने धर्म की अनैतिकता के विरोध का साहस नहीं रह गया है। ब्राह्मण धर्म ने सवर्णों को सदा से संतुष्ट किया है इसलिए वे आप्त-काम एवं युक्त भोग है। इसमें विघ्न उपस्थित हो सकता है तो वह असन्तुष्ट वर्ग के जातिवादी होने से या उनके जातीय उद्बोधन से ब्राह्मण धर्म द्वारा उन पर थोपी गई निम्नता उनके तेजस्वी संगठन का कारण बन रही है। इस प्रकार संगठन के बढ़ते चरणों के साथ-साथ स्थिर स्वार्थी वर्ग की ओर से विविध प्रकार के लांछन और आक्रोश का बढ़ते जाना स्वभाविक है। बौद्ध धर्म के

विकास के पीछे भी जातिवाद या जातीय प्रतिक्रिया देखना उनके उसी भयावेश का द्योतक है, जबकि बौद्ध धर्म जाति व्यवस्था का घोर शत्रु है।

बौद्ध धर्म के ग्रहण से शूद्रों का जातीय हीनता से मुक्ति नहीं मिल सकती है, यह कहा जाता है कि इस प्रसंग में ईसाई या मुस्लिम बनें पूर्व हिन्दूओं का उदाहरण दिया जाता है। ईसाई या मुस्लिमों में उन्हें सम्मान मिला या नहीं, इसकी चर्चा यहां बेकार है, क्योंकि बौद्ध धर्म की सारी ऐतिहासिक पूर्व-भूमिका और संदर्भ उन दोनों से नितान्त भिन्न है। बौद्ध धर्म विदेशी धर्म नहीं है, वह अपने ही भारतीय पूर्वजों की सहस्राब्दियों की अनवरत साधना का फल है। एक देश, एक परिवार, एक कुटुम्ब में ही यह महान आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विस्फोट हुआ था। सहस्राब्दियों का जो बौद्ध साहित्य है, उसमें परम्परवादी वैदिक ब्राह्मणवाद की पुखानुपुख आलोचना की गई है। आज हिन्दू धर्म की जो-जो कमजोरियां हैं, उनके उद्भव और विस्तार का पूरा इतिहास और उसे सम्बन्धित छोटी-बड़ी सूचनाओं से बौद्धों का साहित्य भंडार भरा पूरा है। इस्लाम और ईसाई धर्म को यह सुविधा न थी और न तो उसकी वहां सम्भावना ही की जा सकती है। बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण धर्म की अनुदारता एवं रुढ़िवादिता की दबाकर शताब्दियों तक इस देश में एक ऐसी मानवग्राही व्यवस्था स्थापित की थी, जिसके उदार प्रभावों से भारतीय इतिहास कभी मुक्त नहीं हो सकता। ठीक है कि लगातार ब्राह्मणवादी व्यवस्था में रहने से भारतीय मन के अन्तस्थल तक जाति एवं वर्णव्यवस्था की मार्यादाएं रहस्यवादी मान्यताएं घर कर गयी हैं, किंतु उससे भी अधिक सत्य है कि भगवान बुद्ध और विचारकों ने मानव मन की विशेषताओं, भारतीय मन का इच्छाओं और वासनाओं की एक-एक परत खोलकर अध्ययन किया तथा उन्होंने उसके अंतर्जगत का सूक्ष्म विश्लेषण करके यह दिखा दिया कि किसी अस्तित्व का शाश्वत गतिहीन और अपरिवर्तनशील होना संभव नहीं है, फिर भी उसके प्रति मनुष्य आग्रहशील एवं रुढ़ होना केवल उसके आन, लोभ तथा द्वेष का ही विलास है। मनुष्य के व्यक्तित्व तथा समाज की रुढ़ व्यवस्था के प्रति अनाग्रहशील होना बौद्ध अध्यात्मवाद की प्रथम भूमिका है। इसी अध्यात्मभूमि के प्रकर्ष के लिए बौद्धों ने शील, सदाचार, चित्तपरिष्कार तथा स्वतन्त्र एवं विशुद्ध अनुभव

(प्रज्ञा) को महत्व प्रदान किया। विश्लेषण को इसी वैज्ञानिक प्रक्रिया से बौद्धों ने प्राचीन भारत में यथास्थिति सभी प्रकार जीवन-दर्शन और समाज व्यवस्था का प्रतिवाद किया था और एक अध्यात्मवादी प्रगतिवादी जीवन दर्शन और समतामूलक समाज व्यवस्था के रूप में एक उत्कृष्ट विकल्प प्रस्तुत किया। इसीलिए यथास्थितिवादिता व सर्वप्रथम बौद्ध तत्वज्ञान का देश निकाला किया। इसमें मुस्लिम आक्रमणों का भी उन्हें सहयोग मिल गया। इस प्रकार बौद्ध शास्त्रों के विलुप्त होने के साथ-साथ ब्राह्मणवादियों ने अपने शास्त्रों में बौद्धों के नाम पर ऐसे सिद्धान्त गढ़ लिए, जिनका वे खंडन कर सकते थे, उस स्थिति में जबकि जनता के सामने बौद्ध शास्त्र नहीं रह गए, तो उनके वास्तविक पक्ष से जनता धीरे-धीरे अनभिज्ञ होती गई। उनके सामने बनावटी बौद्ध पक्ष ब्राह्मणों को रूढ़िवादी जीवन दर्शन शेष बचा।

इस प्रकार एकपक्षीय रूढ़िवादी जीवन दर्शन शेष बचा इस प्रकार एकपक्षीय रूढ़िवादी सिद्धांतों ने जनता की बुद्धिवादिता को क्रमशः कुण्ठित कर दिया। इसका भेद उस समय खुला, जबकि यूरोप में बौद्ध अध्ययन की रुचि जागृत हुई और एशिया के देशों में फैला हुआ, विलुप्त बौद्ध शास्त्रों का इन देशों में परिचय बढ़ा। अब भारतीय एवं पाश्चात्य देशों के आधुनिक विद्वानों को जैसे-जैसे बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे हजारों वर्षों में ब्राह्मणवादी ग्रन्थों का महत्व घटता जा रहा है। 18 वीं और 19 वीं शताब्दी तक कुमरित, शंकराचार्य, उदयानाचार्य आदि तथा उनके टीकाकारों का जैसा महत्व माना गया था, वह बौद्ध धर्म ग्रन्थों के मिलने के बाद में नहीं रह गया। अब बौद्ध साहित्य के प्रति श्रद्धा रखने वाली लाखों की संख्या में जब बौद्ध जनता खड़ी हो रही है, तब क्या समाज में प्रचलित मिथ्यादृष्टियों के विरोध में सारा वैचारिक संघर्ष फिर से नहीं खड़ा हो जाएगा? उस संघर्ष में जब ईश्वर, आत्मा तथा शब्द एवं शास्त्र जैसे अजर-अमर भी बौद्धों की तर्क-ज्वाला में गिरते पड़ते देखे जाएंगे, तब न तो जातिवाद के लिए शरण रह जाएगी और न ही जातीय हीनता के लिए। इस देश को बौद्ध धर्म का विकास ही वरदान होगा कि वह यथास्थितिवादी मान्यताएं, जो पिछली शताब्दियों में गलत ढंग से सामाजिक एवं तार्किक

प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी हैं, वह गिरेंगी और शास्त्रवाद की जगह बुद्धिवाद को एवं विषमता की जगह समता को प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकेंगी। इसी पृष्ठ भूमि में प्रजातन्त्र, धर्म निरपेक्षता और समाजवाद के साथ भारतीयता का सामरस्य हो सकेगा।

भारतीय संविधान के निर्माता डॉ० आंबेडकर का यह कहना विचारणीय है कि प्रजातन्त्र और समाजवाद तथा हिन्दू जीवन दृष्टि में से एक ही रह सकेगा। कुछ देर तक बहुसंख्यक पिछड़ी जातियों की समस्याओं को भूल भी जाएं, तो वर्ण – वर्ग अपने सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक मान्यताओं एवं जीवन-दृष्टि के आधार पर क्या जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयवादी और समस्याओं का समाधान कर सकेगा। इन सारी समस्याओं को ब्राह्मणवादी जीवन दृष्टि ने जटिल कर रखा है इन सबके समाधान के लिए बौद्ध प्रभावित जीवन दृष्टि का महत्व स्वीकार करना होगा।

निष्कर्ष :- परम पूज्य बाबा साहब डॉ० आंबेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण करके, दलितों के उद्धार में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बाबा साहब डॉ० आंबेडकर ने मानव-मानव को समभाव से रहने, पढ़ने, लिखने, ऊँच-नीच, कर्मकाण्डों से निजात बौद्ध धर्म ग्रहण करके दिला दी। समता-समानता, बन्धुत्व, करुणा बौद्ध धर्म की आधार स्तम्भ है। बाबा साहब डॉ० आंबेडकर ने भगवान बुद्ध की धर्म देशना एवं आधार स्तम्भ का लाभ आम मानस तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। जिससे भारत में दबे-कुचले, निचले स्तर के लोगों को जागृत होने का अवसर प्राप्त हुआ। अन्यथा की स्थिति में भेदभाव पूर्ण जिन्दगी जीना पड़ती।

संदर्भ ग्रन्थ

- बौद्ध संस्कृति बनाम ब्राह्मणवाद, डॉ० जगन्नाथ उपाध्याय, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- बौद्ध धर्म विकास में डॉ० बी०आर० आंबेडकर का योगदान, डॉ० विमलकीर्ति, संगीता प्रकाशन, दिल्ली।
- भगवान बुद्ध और उनका धम्म, डॉ० बी०आर० आंबेडकर, अनुवादक-डॉ० भदंत आनंद कौशलयायान, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- बुद्ध धम्म का सार, प्रोफेसर पी० लक्ष्मी नरसू, अनुवादक धम्ममित्र सत्यप्रकाश, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- बुद्धचर्या, राहुल सांकृत्यायान, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।

- जहं जहं चरनं परे गौतम के , लेखक-तिक न्यात हन्ह, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली।
- मिलिन्दपंन्ह, अनुवादक भिक्षु जगदीश कश्यप, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- विसुद्धिमग्ग, अनुवादक त्रिपिटकाचार्य डॉ० धर्म रहित, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- भगवान बुद्ध, बौद्ध धर्म और उनका दर्शन, प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।

कृषि के विकास में जैविक खेती की उपयोगिता

डॉ० सुनीत कुमार सिंह*

सारांश

पृथ्वी, मानव व पर्यावरण के बीच मधुर, परस्पर लाभदायी तथा दीर्घायु सम्बन्धों की अवधारणा को आधार बनाकर आज की जैविक खेती की परिकल्पना की गई। समय के बदलते स्वरूप के साथ जैविक खेती अपने प्रारम्भिक काल के मुकाबले अब और अधिक जटिल हो गई है और नये आयाम अब इसके अंग हैं। जैविक खेती का नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रवेश तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उत्कृष्ट उत्पाद के रूप में पहचान इसकी बढ़ती महत्ता का प्रतीक है। विगत दशकों में खाद्य गुणवत्ता सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरण को स्वस्थ रखने की भी जागरूकता बढ़ी है। अनेक किसानों व संस्थाओं ने जैविक खेती को समान रूप से उत्पादन श्रम पाया है। जैविक खेती करने वाले लोगों को तो पूरा विश्वास है कि इस विधा से न केवल स्वस्थ वातावरण, उपयुक्त उत्पादकता तथा प्रदूषण मुक्त खाद्य पदार्थ प्राप्त होगा। जैविक खेती अब विकास की मुख्य धारा से जुड़ रही है और भविष्य में आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय सुरक्षा के नये आयाम सुनिश्चित कर रही है। आधुनिक जैविक खेती अपने मूल रूप से बिल्कुल अलग है। स्वस्थ मानव, स्वस्थ मृदा तथा स्वस्थ खाद्य, स्वस्थ व टिकाऊ वातावरण के प्रति संवेदनशीलता जैविक खेती के प्रमुख घटक हैं।

महत्वपूर्ण शब्द – कृषि, जैविक, मृदा, उत्पादन, खाद्य, उर्वरक, फसल, मिट्टी।

1. प्रस्तावना – जैविक खेती एक कृषि प्रणाली है जो 20वीं शताब्दी की शुरुआत में तेजी से बदलती कृषि पद्धतियों की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुई थी। विभिन्न संगठनों द्वारा जैविक खेती का विकास जारी है। यह जैविक मूल के उर्वरकों जैसे खाद, हरी खाद और हड्डी के भोजन के प्रयोग और फसल रोटेशन, जैविक कीट नियंत्रण, मिश्रित फसल, कीट शिकारियों को

* एसोसिएट प्रोफेसर –अर्थशास्त्र विभाग, रामनगर पी0जी0 कालेज, रामनगर, बाराबंकी (उ0प्र0)

बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सिंथेटिक पदार्थों को प्रतिबंधित या सख्ती से सीमित करते हुए प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले पदार्थों के उपयोग की अनुमति देने के लिए प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले कीटनाशकों जैसे पाइरेथ्रिन और रोटेनोन की अनुमति है।

जैविक खेती मिट्टी, खनिज, पानी, पौधे, सूक्ष्म जीव-जंतुओं और मनुष्य के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों पर आधारित एक कृषि प्रणाली है। प्राकृतिक संसाधनों की वृद्धि हेतु जैविक खेती प्रबंधन स्थानीय मानव संसाधन व ज्ञान पर आधारित रहता है। जैविक खेती रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किए बिना ही पर्यावरण संतुलन को बनाए रखते हुए खाद्यान्न उत्पादन किया जाता है। भारत में जैविक खेती प्राचीन काल से हो रही है। आधुनिक युग में व्यवस्थित रूप से जैविक खेती की शुरुआत ब्रिटिश कृषि वैज्ञानिक सर एलवर्ट हावर्ड के द्वारा 1900 में की गई थी। अधिकांश यूरोपीय देशों में 1980 के दशक में जैविक खेती की शुरुआत प्रारम्भ हुई। उत्पादकता बढ़ाने के लिए विपुल उत्पादन, वीजों, उर्वरकों, कीट, रोग एवं खरपतवारनाशकों का अधिक प्रयोग करने के कारण मिट्टी के स्वास्थ्य, उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, फसलों की अनेक किस्मों, उत्पादकता में ठहराव, उपयोग किए जाने वाले आदानों की दक्षता में आ रही कमी, भजल के गिरते स्तर स्तर ने उत्पादकता के स्तर को सतत बनाए रखने के लिए बड़ी चुनौती खड़ी कर दी है। भूमि में वर्तमान में केवल 0.4–0.5 प्रतिशत जीवांश कार्बन रह गया है जबकि भूमि में जीवांश कार्बन का स्तर 0.8 से अधिक होना आवश्यक है।

आज कृषि जिस मुकाम पर खड़ी है वहाँ से हमारे सामने विकास के दो मार्ग रह जाते हैं।

- (1) एक मार्ग, अत्यधिक रासायनिक खाद, अत्यधिक सिंचाई, प्रदूषित जल।
- (2) घटता जल स्तर, पर्यावरण प्रदूषण, कैंसर एवं दमा जैसी बीमारियाँ, मिट्टी के घटते पोषक तत्व आदि से होकर जाता है।

दूसरा मार्ग जैविक खेती का।

2. उद्देश्य — प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य निम्न है —

- (1) जैविक खेती का उद्देश्य मृदा पर्यावरण का संरक्षण एवं पुनर्भरण करना।
- (2) जैविक खेती से भूमिगत जल एवं मिट्टी की जलधारण क्षमता में वृद्धि करना।
- (3) प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित दोहन करना है।
- (4) गुणवत्तायुक्त खाद्य पदार्थों का अधिक मात्रा में उत्पादन करना।
- (5) पौधों एवं जन्तुओं का उपयोग कर जैवकीय चक्र को गति प्रदान करना।

3. शोध प्रविधि—अध्ययन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, वार्षिक प्रतिवेदनों, इण्टरनेट वेबसाइटों आदि के माध्यमों का प्रयोग अध्ययन में किया गया है।

आज जैविक खेती की आवश्यकता क्यों है?

आज पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या भारत के सामने ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के समक्ष है। इस समस्या के उत्पन्न होने में आज की कृषि विधि का भी योगदान है। आज किसान अधिक उत्पादन के लिए फसलों में जो रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक दवाइयां डालते हैं, इसका प्रतिकूल प्रभाव जल, वायु, मृदा पर पड़ता है और लोगों का स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है।

जैविक कृषि एक श्रम प्रधान तकनीक है। इससे बेरोजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी की समस्या कुछ हद तक हल होगी तथा जैविक कृषि में स्थानीय पोषक तत्वों का प्रयोग किया जाता है। विदेशों से आयात की जाने वाली कीटनाशक दवाइयाँ, रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम होने से कृषि लागत कम आएगी। किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होगा तथा देश के भुगतान संतुलन पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। जैविक खेती कम लागत और अधिक उत्पादकता वाली विधि है। जैविक खेती द्वारा उत्पाद की कीमत अधिक मिलती है। जैविक खेती के फलस्वरूप सिंचित क्षेत्र में 5 से

10 प्रतिशत तथा वर्षा जल आधारित कृषि क्षेत्रों में 40 से 50 प्रतिशत तक की वृद्धि दर्ज हो सकती है।

जैविक खेती से लाभ

- जैविक खेती के द्वारा मृदा के कार्बनिक स्तर में वृद्धि होती है।
- जैविक खेती में पोषक तत्व संतुलित एवं दीर्घकालिक रूप से उपयोगी बनते हैं।
- पशुधन में वृद्धि होती है तथा कुपोषण में कमी आती है।
- जैविक खेती से उत्पादन लागत कम आती है क्योंकि जैविक उर्वरक एवं जैविक कीटनाशकों का उत्पादन किसान निजी स्तर पर भी कर सकते हैं।
- जैव खाद के निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित होती है।
- मिथेन, अमोनिया का उत्पादन भी जैविक खेती में कम पाया गया है।
- जैविक खेती पर्यावरण के लिए सुरक्षित है।
- जैविक खेती द्वारा उत्पादित चारा का प्रयोग करने के लिए फलस्वरूप पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता अधिक समय तक बनी रहती है।
- जैविक खेती द्वारा उत्पादित उत्पाद की कीमत अधिक मिलती है।

भारत में जैविक खेती

भारत में जैविक खेती विकास के तीन आयाम हैं। विभिन्न वर्ग के किसानों ने अलग-अलग कारणों से जैविक खेती को अपनाया है।

पहला वर्ग— वह है जो ऐसे क्षेत्रों में बसा है, जहाँ परम्परागत तरीके से बिना किसी निवेश या बहुत कम निवेश के खेती की जाती है।

दूसरा वर्ग— वह है जिन्होंने पारम्परिक रसायन आधारित कृषि के प्रतिकूल प्रभावों के कारण चाहे वह मृदा की धरती उर्वरा शक्ति हो, खेती में आने वाली अधिकतम लागत हो या लागत के बाद अनुमान के अनुसार प्रतिफल न मिल पाना हो हाल ही में जैविक खेती को अपनाया।

तीसरा वर्ग— वह है जिन्होंने इसके व्यवसायिक पहलू को समझा तथा बढ़ती बाजार माँग तथा सम्भावित अधिक कीमत के कारण इसे अपनाया।

अतः पहला वर्ग परम्परागत तरीके से खेती करने वाला है और अप्रमाणित है, दूसरे वर्ग में प्रमाणित एवं अप्रमाणित दोनों प्रकार के कृषक हैं एवं तीसरा वर्ग अधिकांशतः प्रमाणित है। यह तीसरा वर्ग जो व्यापारिक दृष्टिकोण रखते हुए संगठित रूप से जैविक खेती कर रहा है। प्रमुख रूप से आकर्षण का केन्द्र है तथा आज प्रमाणीकृत जैविक खेती के जो भी आँकड़े उपलब्ध हैं वे इसी वर्ग के किसानों से सम्बन्धित हैं।

देश में जैविक खेती के अधीन क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि हो रही है। वर्ष 2003 में 42000 हेक्टेयर भूमि पर जैविक खेती की जाती थी जो वर्ष 2007 में बढ़कर 5.38 लाख हेक्टेयर हो गया यानी चार वर्ष में इसके क्षेत्रफल में सात गुना से अधिक वृद्धि हुई। वर्ष 2010 मार्च में 10.85 लाख हेक्टेयर से अधिक हो गया। कुल मिलाकर लगभग 400 लाख हेक्टेयर क्षेत्र जैविक प्रमाणीकरण के अधीन है।

देश के महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, देश में जैविक खेती में अग्रणी है। भारत का जैविक खेती उद्योग 2 करोड़ डॉलर से भी अधिक का है और यह पूरी तरह से निर्यातोन्मुखी है।

भारतीय जैविक कृषि की प्रमुख विशेषताएँ

पिछले कुछ वर्षों में हुई अभूतपूर्व प्रगति से जहाँ न केवल जैविक कृषि क्षेत्र एवं वनीय क्षेत्र में भारत का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ष 2008-09 में 77,000 टन जैविक कपास उत्पादन के साथ भारत जैविक कपास उत्पादक देश बन गया है। कुल वैश्विक के पास उत्पादन में भारत का हिस्सा 50 प्रतिशत है।

जैविक प्रबन्धन के अन्तर्गत उत्पादन क्षेत्र

वर्ष	जैविक प्रबन्धन के अन्तर्गत क्षेत्र (हेक्टेयर)
2003-04	42,000
2004-05	76,000
2005-06	1,73,000
2006-07	5,38,000
2007-08	8,65,000
2008-09	12,07,000
2009-10	10,85,648

राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र

भारत सरकार को कृषि मन्त्रालय द्वारा देश में जैविक खेती के कार्य को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र का गठन 2004 में किया गया था। इसका मुख्यालय गाजियाबाद में हैं। नागपुर, जबलपुर, हिसार, भुवनेश्वर तथा इम्फाल में इसके क्षेत्रीय केन्द्र स्थापित किए गए हैं।

मैक्रो मैनेजमेन्ट ऑफ एग्रीकल्चर (एम.एम.ए.)

उत्तर भारत में हरित क्रान्ति के अग्रणी राज्य पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में पैदावार बढ़ाने के लिए रसायनों व रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग किया गया। परम्परागत फसल चक्र को धता बताते हुए गेहूँ व धान की खेती की गई, जिससे खेती की उर्वरा शक्ति का अत्यधिक दोहन हुआ और भूमि में असंतुलन पैदा होने लगा। इससे इन राज्यों के उपजाऊ खेत ऊसर होने की हद तक पहुँच गए हैं। मैक्रो मैनेजमेन्ट ऑफ एग्रीकल्चर नामक इस परियोजना के तहत खेतों की उत्पादकता बनाए रखने के लिए रासायनों व रासायनिक उर्वरकों को संतुलित प्रयोग, जैविक खेतों और फसल चक्र को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

जैविक खेती को बढ़ावा देने वाले प्रमुख संगठन

रासायनिक खेती को त्यागने और जैविक खेती को किसानों के बीच लोकप्रिय बनाने के कार्य में कई गैर-सरकारी संगठन सक्रिय हैं। जैसे –

- (1) **आई फॉम**— इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ ऑर्गैनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स (आई फॉम) जर्मनी की एक संस्था है जिसका मुख्यालय बॉन में स्थित है। इस संस्था का उद्देश्य विश्व भर के देशों में जैविक खेती के कार्यों को बढ़ावा देना तथा नियम व मानकों का क्रियान्वयन करना है। आईफॉम द्वारा जैविक खेती सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशालाओं व मेलों का आयोजन भी किया जाता है।
- (2) **नवधान्य**— इस संगठन की स्थापना प्रसिद्ध पर्यावरणविद् डॉ० वंदना शिवा ने की। इसका कार्यालय नई दिल्ली में है। यह संस्था किसानों को हाइब्रिड व आनुवंशिक बीजों से होने वाले दूरगामी खतरों के प्रति जागरूक करती है। यह संस्था प्रारम्भिक बीजों, उर्वरकों को किसानों के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए सम्मेलनों, किसानों से संवाद व देशी बीजों के वितरण का कार्य करती है।
- (3) **जनहित फाउंडेशन**— 1998 में स्थापित यह संस्था पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जल संरक्षण, संवर्द्धन एवं जैविक खेती के क्षेत्र में कार्यरत हैं। इसका कार्यालय मेरठ उ०प्र० में है। कृषि सम्बन्धी सरकारी नीतियों की सकारात्मक आलोचना कर किसानों के अधिकारों के लिए प्रयत्नशील रहना संस्था का प्रमुख कार्य है।

भारत में जैविक खेती की प्रासंगिकता

हरित क्रांति का स्वरूप पूँजी प्रधान रहा है। इसीलिए यह लघु व सीमांत किसानों की परिधि से दूर हो रही है। छोटे व सीमांत किसानों की जैविक खेती का लाभ देने की सबसे उपयुक्त परिस्थिति है। जैविक खेती के तहत उगाए जाने वाले भोज्य पदार्थों की माँग में उपभोक्ताओं द्वारा सबसे पहले मोटे अनाज, दलहन एवं मसालों को प्राथमिकता दी जा रही है। ये फसलें हमारे देश में लगभग सभी छोटे किसानों को अपनी खेती को पूर्णतः एकीकृत रूप से जैविक पद्धति में बदलना होगा। इसमें न केवल

फसलें बल्कि पशुपालन, बागवानी, वृक्षारोपण आदि प्रत्येक गतिविधि को जैविक पद्धति से करना होगा।

निष्कर्ष— भारत में प्राकृतिक खेती कोई नई अवधारणा नहीं है। खेती की उपज बढ़ाने और लोगों का पेट भरने के लिए भोजन की आवश्यकता से एकदम आगे पोषण सुरक्षा के बारे में विचार किया जाने लगा है। किसी भी खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता जाँचने में अभी तक उसके रूप, आकार और बाहरी तत्वों की प्रतिशत मात्रा को मुख्य आधार माना जाता रहा है। वर्तमान में खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में उनकी पोषण की जाँच को आधार माना जाने लगा है। इस कसौटी पर जैविक कृषि उत्पाद एकदम खरे उतरते हैं।

अतः लोगों को खाद्य व पोषण सुरक्षा प्रदान करने में जैविक खेती की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुपालन में उत्पादकों की अधिक जागरूकता और क्षमता निर्माण को बढ़ावा देने से भारतीय जैविक किसान जल्द ही वैश्विक कृषि व्यापार में प्रमुख भूमिका निभाने में सक्षम होंगे।

संदर्भ ग्रन्थ

1. कुरुक्षेत्र पत्रिका दिसम्बर 2021.
2. भारतीय अर्थव्यवस्था – रुद्रदत्त एवं सुन्दरम्।
3. आर्थिकी – 2010–11.
4. योजना पत्रिका अक्टूबर – 2010.
5. अर्थव्यवस्था अवलोकन पत्रिका, जून 2011.
6. तिवारी, के०एन० (2005) टिकाऊ खेती के लिए मृदा-उर्वरता पोषक प्रौद्योगिकियाँ।
7. प्रमोशन ऑफ ऑर्गेनिक फार्मिंग एण्ड सोईल हेल्थ मैनेजमेन्ट कार्यशाला (2014–15), कृषि विभाग, उत्तराखण्ड।
8. राजेन्द्र प्रसाद (1996) क्रोपिंग सिस्टम एण्ड संस्टेबिलिटी ऑफ एग्रीकल्चर, इण्डियन फार्मिंग, नवम्बर।
9. शर्मा, ए०के० (2005) : ए हैण्ड बुक ऑफ आर्गेनिक फॉर्मिंग, एग्रोबाइस पब्लिशर, जोधपुर।
10. कुरुक्षेत्र जून-2014, पेज नं०-8, भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय।

CRITICAL EXAMINATION OF A SOCIO-CULTURAL EFFECT OF SERIALS ON INDIAN TV CHANNELS

Dr. Kaushal Tripathi*, Dr. Muhammad Nayim**

Introduction

In a paper, "The Power of TV: Cable Television and Women's Status in India," University of Chicago Department of Economics professor Emily Oster and Robert Jensen of the University of California, Los Angeles, explore the effect of the introduction of cable television in rural areas of India on a particular set of values and behaviors, namely attitudes toward and discrimination against women.

Although issues of gender equality are important throughout the world, they are particularly salient in India. In a 1992 article, Nobel Prize-winner Amartya Sen of Harvard University argued that India had 41 million "missing women"-women and girls who died prematurely due to mistreatment resulting from a dramatically male-biased population. The population bias toward men has only gotten worse in the last two decades as sex-selective abortion has become more widely used to avoid female births. More broadly, girls in India are discriminated against in nutrition, medical care, vaccination, and education. Even within India, gender inequality is significantly worse in rural than in urban areas.

Many characters on popular soap operas have more education, marry later, and have smaller families-all things rarely found in rural areas; and many female characters work outside the home, sometimes as professionals, running businesses, or in other

* Assistant Professor, Bhaskar Institute of Mass Communication and Journalism, Bundelkhand University, Jhansi, Email ID: k.tripathi29@gmail.com

** Assistant Professor, Department of Social Work, Bundelkhand University, Jhansi (U.P.)

positions of authority. By exposing rural households to urban attitudes and values, cable and satellite television may lead to improvements in status for rural women. It is this possibility that Jensen and Oster explore in their paper. In particular, they evaluate the effect of the introduction of cable and satellite television on a variety of measures of women's status: autonomy, attitudes toward spousal abuse, son preference, and fertility. In addition, they explore the effects on education for children, which some authors have argued will increase when the status of women is higher.

What Are Daily Soap Operas?

A soap opera, often referred to simply as a soap, is a serial drama, on television or radio, that related story lines dealing with the lives of multiple characters. The stories in these series typically focus heavily on emotional relationships to the point of melodrama. The name soap opera stems from the fact that many of the sponsors and producers of the original dramatic serials' broadcast on radio were soap manufacturers, such as Dial Corporation, Procter & Gamble, Colgate-Palmolive and Lever Brothers

The term "soap opera" was coined by the American press in the 1930s to denote the extraordinarily popular genre of serialized domestic radio dramas, which, by 1940, represented some 90% of all commercially-sponsored daytime broadcast hours. The "soap" in soap opera alluded to their sponsorship by manufacturers of household cleaning products; while "opera" suggested an ironic incongruity between the domestic narrative concerns of the daytime serial and the most elevated of dramatic forms. In the United States, the term continues to be applied primarily to the approximately fifty hours each week of daytime serial television drama broadcast by ABC, NBC, and CBS, but the meanings of the term, both in the U.S. and elsewhere, exceed this generic designation.

The first serial considered to be a "soap opera" was Painted

Dreams, which debuted October 20, 1930 on Chicago's WGN. Early radio series such as Painted Dreams were broadcast in weekday daytime slots, usually five days a week, when most listeners would be housewives; thus the shows were aimed at and consumed by a predominantly female audience

India's first soap opera was Hum Log, which first aired in 1984 and concluded with 154 episodes, was the longest running serial in the history of Indian television at the time it ended. It had an audience of 60 million. Every episode of was about 25 minutes long, and the last episode was about 55 minutes. At the end of every episode, veteran Hindi film actor Ashok Kumar would discuss the ongoing story and situations with the audience using Hindi couplets and limericks. In later episodes, he would introduce the actors who played characters in the serial and end his monologue with the Indian language versions of the words "Hum Log."

Socio-Cultural Effect of Such Serials

Television broadcast has broad socio-cultural effects on the society all around the world. The strong verbal and non verbal combination and the facility to highlight different subject matters created one of the most important impressions in mass media. There are so many angles to see as to what extent TV has brought about changes in daily life of people and the nations as well.

1. Society

India is a vast country and has a long history. Its society has evolved through the ages and has also been affected by foreign influences giving it extreme diversity and made unity amidst diversity a characteristic of the Indian society. Despite all its cultural history and religious edifice has provided her a unique existence. Sharing and community living are in the heart of rural India. It is a society whose zenith lies in its morality and values. Aesthetism and immaterialism are some of it key characteristics. Respect for elders and love for all living beings is what is practiced.

India lives in villages. But what television has propagated is popular culture common in only metropolitan cities. This popular culture disseminated through satellite is effecting the socio- culture of Indian society in number of ways.

- **Materialism**

The soap operas generally seen on the television are stories of traditional families. All the characters whether they are poor (generally they are not shown on the current television serials. Now time has pass gone through telecasting 'Neem ka Ped' or 'Godan' or 'ek kahani' or 'Malgudi days') or rich will be well dressed. All women are good looking with decent jewellery ,well makeup and combed hairs. They all are living in well decorated houses with antique collection, nice curtains and furniture. All men have good source of earnings (from where! generally not shown.) they have cars to move and all necessary thing they need in life. They all are materially satisfied human beings. All there problem are related to human relationship.

- **Cultural changes and influences**

Perhaps most affected of all areas due to watching TV serials is the cultural changes that have come about over the years. TV dramas have largely influenced the thought process of many on normal living to acculturation by seeing the blaze of exotic life style. That is one reason that intellectuals always campaign to show as much of a local culture on TV broadcast as possible so that cultural identity of a particular region, tribe, nation or clan be kept in its traditional way. There have been long debates on the influence of other cultures, especially the ones from the west, on the living style of other societies through TV programs. Smelling a deliberate attempt to seduce the youth of conservative societies to the sparkling and bold images of the west, there rages a strong debate under the title of cultural imperialism. Of late, these debates are paying off as there is an element of awareness to resist such manipulations and to keep one's culture well defended against such invasions.

• Structure of family

From all the serials I have seen, the constant theme seems to be - living in a joint family is bad for your health, wealth and sanity. Makers of such serials seem to be sending a message that to live happily, one should live in a secular, nuclear unit. This is very damaging to Indian society and is contrary to our ethos. Sadly, families all over India - and abroad - watch these serials as if they are "masla-melodramas", not recognising the poison hidden within it.

• Escapism

Most of us in the evening devote our time in watching these serials. We generally avoid meeting our friends and relatives in that period of time in order to not miss our favourite serials. Over and above that we also not feel good when some guest has visited our home on the same time. What all this has done is that we are more comfortable in virtual world than real. Social gathering require social commitment. We avoid such commitments. We hide themselves from our duties and responsibility to others in the society. All this is escapism. It is like day dreaming from the real world.

• Perpetuates traditional gender stereotypes

Gender roles are socially constructed; most of the behaviour associated with gender is learned rather than innate. People learn what sorts of behaviour and personality are regarded in their cultural context as appropriate for males or females. Television also perpetuates traditional gender stereotypes because it reflects dominant social values. In reflecting these values, television also reinforces them, presenting them as 'natural'. Thus, as one might expect in our society, which is largely dominated by men; influenced by these stereotypes, unconsciously what gets reproduced is a traditional 'male' perspective, perpetuating dominant gender stereotypes. Many narratives on television are still implicitly

designed to be interpreted from a biased perspective or a perspective that commodifies women or shows them in traditional stereotyped roles and responsibilities.

- **Extra marital relationships**

Today our serials show a rising trend in extra marital relationships that are depicted on the small screen. A serious question that the author wishes to raise is the justification for indulging in extra marital relationships as shown in many teleserials and the dilution of our moral standards. Are extra marital relationships that are casually shown on television hinting at the acceptance of such relationships by our society? Are we moving towards a society where fidelity is no more considered significant for a marriage? Are we blindly aping the western culture without imagining consequences of the impact of our present generation following similar trends? How justified is the third woman/man in a marital relationship? How correct or incorrect is it to be an unwed mother or to bear child of another man while still being married? (Prerana in *Kasauti Zindagi Ki*)

2. Women

Television serials have undergone huge transformation in the last decade and a half. Serials have moved a great deal from portraying strong women characters like Rajni, Kalyani (Udaan) of 1980s, which inspired middle class women and challenged the mainstream ideology. Today there is indeed an overdose of serials that are currently being aired on television. From the endless list of popularly watched K serials on Star Plus - *Kasauti Zindagi Ki*, *Kyonki Saas Bhi Kabhi Bahu Thi*, *Kahaani Ghar Ghar Ki*, *Kahin Kissi Roz*, *Kavyanjali*; to Zee TV's *Teen Bahuraniyan*, *Har Ghar Kuch Kahta Hai*, *Ghar Ki Lakshmi Betiyaan*, *Meri Doli Tere Angna*; Sony TV's *Thodi Khushi Thode Gam* and *Khwaish*. Most of these soaps show "home" or the domestic sphere as the core setting and the fundamental theme is centered on women with primary concern

on family relationships. In this context, women's achievement is valued in terms of their responsibility for running a successful household, settling down in matrimonial bliss, bearing children and making them 'ideal' human beings.

● **Portrayal of Stereotyped Ideologies**

Since television represents mainstream ideology, the construction of gender stereotypes on television reinforces the stereotypical definitions of Indian womanhood. Most serials are found to be reinforcing and strengthening the gender stereotypes already present in Indian society. Most themes centre on a strong sense of good and bad, right and wrong, and are mostly painted in white and black with no grey shades. Women are mostly portrayed in the light of approval or disapproval. These role stereotypes reflect the typical patriarchal mindset; where the housewife is favoured while the women in power (power hungry and full of vices) are often depicted as villains. Men are showing going to office while women stay at home (not that anyone ever does any work). The vamp is the antithesis of the protagonist; portrayed as ultra modern, mostly working (the boardroom woman), with a plunging neckline, short hair, bold, conniving, heartless, ruthless, and perfect in the art of seduction. Here again "modernity", or "Westernization" as it is commonly called, is co-related and confused with debasement of morals and ideals. The attitude of women towards societal norms and values, her perception towards life, her consequent position and status in the family and broadly in society are shaped and moulded by the "models" of womanly conduct inherited from the past. A prominent image of Indian womanhood that has dominated for long in the Indian ideology, creating an indelible impact on the Indian mindset is that of a pativrata woman. The central protagonists of most popular prime-time soap operas are typical prototype of the pativrata and the 'glorious motherhood' images. Woman is an archetype of feminine perfection and is popularly held up as a model to be emulated.

The idealization of motherhood puts serious physical and emotional pressures on women and this vision of motherhood is highly romanticized and yet its standards for success remain forever out of reach, no matter how hard women may try to 'have it all'. The question that author would like to raise is if these are the values, characters and standards that we are trying to project for our young generation to emulate? Do we expect our youngsters to follow the traditional stereotypes?

Another prominent observation is that all women in the serials appear on screen with heavy makeup, wearing expensive jewellery and attire, ready to attend a marriage party any minute. All married women are shown wearing mangalsutras. Moreover, it seems that all serials are replica of each other, because all characters look, dress and behave the same. Indian soaps show women as the primary target for drama while male characters are shown by and large, secondary and inconsequential. Men are shown hanging around impishly, clutching at the saree pallus of their aggressive wives. Few men who are shown villainous, also hang impishly around the 'real villains' wearing spaghetti straps (the women).

● **The Idealistic: 'Superwoman'**

Another feature commonly portrayed is the unrealistic 'superwoman': the super wife, the super daughter-in law and the super mother. This 'superwoman' has multifarious qualities -loyalty, compassion, devotion, her domain is her home and her family justifies her very existence. Her greatness lies in the obliteration of her individuality and self worth; she is more of an ideal, a superlative rather than a personality. In the role of a mother she sacrifices her happiness for her children and family, she is the panacea for all ills that might plague the family. Kumkum, Sudha in *Meri Awaaz Ko Mil Gayi Roshni*, Bhabhi are some such examples. Protagonists Perna, Parvati, Tulsi, now Renuka Shahane in *Jeena Issi Ka Naam* goes to jail or the mental asylum for crimes

they never committed. In the end, they always win of course but not before going through hell, tears and physical violence. The impact of such larger than life characters is so strong that it is nearly impossible to demean their effect.

● **Vampish Woman: A New Genre**

Ekta Kapoor's teleserials gave Indian television a new genre of women characters and the success of these characters calls for questioning our changing idols. Women if not shown portraying stereotyped, superhuman characters; are shown as schemers, manipulators, home-breakers or as vamps e.g. Kamolika in *Kausati Zindagi Ki* and Anu in *Des Mein Nikala Hoga Chand*, Mom in *Kahin Kissi Roz* and Kabhi Aye Naa Judaai. Kidnappings, killings, creating family dispute and marital disharmony are some of the role attributes that are essayed by such female characters in one episode after the other. Practically each of these negative characters exhibits revenge, greed, deceit and diabolical plots. These characters are often in contrast and pitted against the ideal ones mentioned earlier.

The larger issue in question is the kind of role models that we want our young generation to emulate? Do we want to see our girls and women as idealistic, pativratas or do we accept the westernization of our traditional Indian values that stressed upon mutual trust, companionship, love and devotion in a relationship?. Are we in any way through our television serials inculcating negative values of being unreliable, malicious and cunning in our relationships? Are we pressurizing our young generation especially women to match the flawless, larger than life, super human characters that are being portrayed on television? Could there be any link between the present state of mental confusion, distorted perceptions, imbalanced viewpoints, rising number of pre and extra marital relationships among the youth with the portrayal of relationships in television? Are our youngsters in a state of mental dilemma over the Do's and Don'ts that should be followed or be

rejected? Are they torn between the past and the present values, face societal pressures to fit into the age old role models on the one hand, and individual aspirations and ambitions to emulate the likes of Kalpana Chawla, Sunita Williams. Is distorted and ambivalent projection of relationships on television one of the reasons for the identity crisis being faced by the young generation, rising rate of crimes against women, increase in suicides, incidents of drug abuse? This calls for a serious analysis of the entire issue of the projection of women in television, and in media in general.

3. Children

The impact of visual media as a very powerful vehicle for communicating ideas and images is known to be tremendous. Television creates a world which seems very real and viewers are unable to differentiate between the contrived world and the real one. Impact of television is more on the young children and adolescents, who sit in front of the television, and for hours, succession of pictures is watched by eyes that are only just opening onto the world and it becomes imprinted on minds that are still impressionable. The availability of cable and satellite television exposes them to new information about the outside world; reinforces stereotypes and beliefs which may affect individual attitudes and behaviours. It's also a known fact that children's gender development occurs through observation and imitation of gender behaviour. While family and school play the roles of primary agents of socialization for children, transmitting values, beliefs, Do's and Don'ts of society; the role and influence of television cannot be undermined considering the amount of time that children spend watching television these days.

• Early maturation

If accidentally, children watch the TV programmes meant for adults, it can prove dangerous. Such TV programmes are based on the concepts like divorce, crime, murders etc; which can have

a very bad impact on child's mind. At times, unwanted thoughts may start coming to their mind which can divert their attention from studies and force them to do undesirable things. It can create disturbance in child's life and make his or her life stressful. Watching TV for longer time can also deteriorate child's health

- **Degradation of moral values**

Though billed as "family shows", most denigrate typical "family values" that would be universal in any culture. They especially debase Indian / Hindu / Sikh family values to the lowest possible degree. These serials give no positive "values" our children may want to emulate. Often seeing these, children wonder, if this is what being "Indian" means, is it worth being "Indian" ?

- **Aloneness**

Earlier, children loved to visit other houses with their parents. But nowadays, if we ask them to join us, they will say "Amma, please, we will sit at home and watch TV." They prefer sitting at home and watching TV over visiting relatives or friends. Parents must also ensure that children are getting sufficient physical exercise and social gathering.

- **Increasing violence activities**

What children are watching in the serials is that people lie, cheat, keep dreadful secrets and yet no one in the family ever seems to know. In "joint family" where every lives in such close proximity, it is amazing that regular lies are never caught. Family members seem to constantly work to undermine each other. Often, people are shown to arrange kidnap, murder and rape of their own family members with outside goons ! At any time, anyone can get slapped. Domestic violence is rampant in these serials. Everyone seems to harbour "secrets", no matter how trivial, leading to terrible misunderstandings and grief for all concerned. All this has increase the violent behaviour of the children.

References

- <http://topyaps.com/top-10-ways-saas-babu-tv-series-are-ruining-indian-culture>
- <http://www.preservearticles.com/201106087664/essay-on-impact-of-tbe-television-on-tbe-society.html>
- http://www.zainbooks.com/books/mass-communication/introduction-to-mass-communication_34_effects-of-tele
- <http://www.google.co.in/url?sa=t&rct=j&q=effects%20of%20tv%20serials%20on%20society&source=web&cd=3>
- <https://sites.google.com/a/sriram.ac.in/sriramgroupofinstitutions/impact-of-tv-series-on-society>
- <http://forbesindia.com/article/chicago-booth/televisions-impact-on-the-status-of-women/5362/1#ixzz2sWyVjXmi>
- <https://sites.google.com/a/sriram.ac.in/sriramgroupofinstitutions/impact-of-tv-series-on-society>
- http://wiki.answers.com/Q/What_are_daily_soaps?#slide=1

'CAUSE AND EFFECT RELATIONSHIP BETWEEN THE INDIVIDUAL PREFERENCES AND WHAT MEDIA SERVE TO THE INDIVIDUALS'

Dr. Kaushal Tripathi*

Introduction

The research 'cause and effect relationship between the individual preferences and what media serve to the individuals' has derived its genesis from the very popular concept of Elihu Katz, Jay G Blumer and Michael Gurevitch,, what they termed as 'uses and gratification' theory of media effects. They turned their attention towards the users that how they used the media to live out their fantasy lives and to seek out other gratifications, or even to inform and educate themselves about the world and its people. Thus the media 'effect' was related to the needs and activities of audiences. The theory stands on the concept of 'Active Audience'. Here active stands for the willingness of the users to expose themselves to the media of their choice, the time they preferred, for the content which suits to them and many other interactions. The core concept of uses and gratification is to think or explore the media effect from the point of the user. That is just opposite of the concept 'what media do to the people to what people do to the media'.

Research Problem

Individuals are usually more dependent on available media if their access to media alternatives is limited. The more alternatives there are for an individual, the less is the dependency on, and influence of, a specific medium. With the incoming of new media technology the user behavior of the individual is changing rapidly.

* *Assistant Professor, Bhaskar Institute of Mass Communication and Journalism, Bundelkhand University, Jhansi, Email ID: k.tripathi29@gmail.com*

Objective

To establish a cause and effect relationship between the individual preferences and what media serve to the individuals.

Hypothesis

Young generation is more satisfied with internet media while old age with print media and middle age with television.

Review of Literature

In 1944 Herta Herzog was the first to classify such reasons why people chose specific types of media. For this purpose she interviewed a number of soap opera fans to identify what kind of gratification they received from such programs. The three categories she found on the basis of her study were emotional, wishful thinking, and learning. Herzog was the psychologist and she was the first to mark the various diverse dimensions of usage satisfaction, with the term "Gratifications".

The origin of uses and gratifications can be traced backed to Lasswell's (1948) model of who uses which media, how and with what effect. Lasswell's identified three primary functions of the mass media: surveillance of the environment, correlation of events, and transmission of social heritage, which served as the basis for formulating media needs and expectations within the uses and gratifications model.

Berelson in 1949 took advantage of a New York newspaper strike to ask people why they read the paper, the responses fell into five categories: reading for information, reading for social prestige, reading for escape, reading as a tool for daily living, and reading for a social context.

The next step in the development of uses and gratifications research began during the late 1950s and continued during into the 1960s. In this phase the emphasis was on identifying and operationalizing the many social and psychological variables that

were presumed to the antecedents of different patterns of consumption and gratifications.

In 1954 Wilbur Schramm developed the fraction of selection, a formula to determine which form of mass media an individual would select. The formula helped to decide the amount of gratification an individual would expect to gain from the medium over how much effort they had to make to achieve gratification. He asked the question, 'what determines which offering of mass communication will be selected by a given individual?' the answer he offered is called the fraction of selection, and it looks like:

Expectation of reward/Effort Required

His point was that people weigh the level of reward they expect from the medium or message against how much effort they must make to secure the reward.

Klapper (1960) reviewed decades of research on mass communication to conclude that the first, the mass media appear to have less power than the average citizen, second, that media effects are of a minor nature, and third, that the actual process of media effects is far more complex and a function of many factors. Klapper's conclusions were not dismissive of all media effects. Rather, they were directed on a combination of psychological and social factors. The work marked a departure from bullet model assumptions, propaganda research of war years and short term effect studies that had consider direct and immediate effects. Uses and gratifications emerged as an alternative perspective that could study and understand media effects as a result of more complex process.

Schramm; Lyle, and Parker in 1961 in their extensive study found that children's use of television was influenced by individual mental ability and relationship with parents and peers, among other things.

Research Methodology

Type of research: The study is a fundamental research through which researcher make effort to convert of my generalisation of 'shifting the pendulum;' to a theory. It is also quantitative as it deals with number of variables relating to amount of consuming times in hours or frequency of using a media, various demographic variables etc which can be found out by quantitative methods. This research is also qualitative as lots of variable are, depending on their memory, their wishes, their attitude etc. As per the criteria of media effects research is concern, it comes under uses and gratification studies. A survey method is used with structured closed end questionnaire. Purposive sampling technique is used for selection of respondents.

Area of Research: Kanpur formerly Cawnpore is the second most populous city and the largest urban agglomeration in the Indian state of Uttar Pradesh. It is one of the largest industrial cities in India.

Method of data collection: Survey is used as primary method of data collection while for review of literature and various other related information secondary sources of data collection were looked.

General Information of the Respondents

For the research a survey is conducted with a self-explanatory, structured, closed end questionnaire in the Kanpur city. The sample size of the survey is 400. The respective number of male and female respondents` in the survey are 236(59%) and 164(41%). The distribution of the respondents` is slightly tilted towards male respondents`. The age wise distribution of the respondents` in 16-25yrs is 166(41%), 26-40yrs is 132(33%) and 40yrs and above category is 102(26%). The shift is towards younger aged group. Respondents` under different educational qualification are 153(38%) in under graduate group, 156(39%) in under Post

Graduate group and 91(23%) in Post Graduate and above group category. Under graduate respondents` form the major part of the survey. Income distribution of the respondents` is 246(61%) in under 25,000/-, 110(28%) in above 25,000/- to 50,000/- and 44(11%) in above 50,000/- category. It is evident that the majority of the respondents` are from first category. Distribution of the respondents` according to the status of living (with respect to family planning) is 119(30%) as single, 45(11%) as couple, 106(27%) as couple with children`s and 130(33%) as couple with children`s and parents category. It is clear from the distribution that the majority of the respondents` was lying on the extreme right and left categories.

Conclusion

Individual preference for various programs

Movies: In all discussed six medium only two are included in the survey for movies, i.e., Television and Internet. The young aged are found to be more profound in preferring internet for movies. The aged respondents are with television. The mid age is in between the two.

Music: Radio is more preferable for all aged groups. With the increase in age prefer ability also increases. For the young age respondents` television and internet are not far behind.

Soap Opera: Television is the best suitable medium for the soap opera in almost all aged group. The aged are more profound. Young aged shows a slight shift towards internet but still far behind the television.

Infotainment: Television and Internet are leading the competition far ahead than others for young and mid aged groups while radio and newspaper for the old age group. Book and magazine were least preferred.

News: For young age internet is most preferable, thereafter comes newspaper and television in order. For the mid aged television and newspaper both are most preferable. For the aged ones newspaper is the first choice than television and after it radio.

Sports: For the young age television is most favorable thereafter are internet and newspaper. For the mid age group television comes first, then newspaper and after it internet. For the aged group the order of preference is television, radio and newspaper.

Lifestyle: Internet is most preferable for young aged, television and newspaper are second and third runner. For mid aged television is the main attraction. Aged one discarded all.

Adventure: Television is the first choice thereafter internet for the young aged. For mid age and old age respondents` television stands alone.

Devotional: young age have nothing much preference for devotional program. Television is best suitable for the mid age group. For aged one after television, magazine is the second most preference.

Shopping: Internet is most favorable for young and mid aged respondents` thereafter television. The reverse is true for old age.

What media serve to the need of individual preference?

Movies: Young aged group found more dissatisfied with television for what it is serving. Internet is more satisfactory medium for movies for young aged group. Mid age is still going with the television. Aged ones are founding internet as more promising.

Music: Every aged group is found to be satisfied with the radio for music. Television is losing its ground to the internet for all aged, but more for the younger side.

Soap Opera: Television is found satisfactory, but in comparison to the individual preference the percentage for what it is serving is decreased. All other medium were discarded, even internet is helpless.

Infotainment: Internet and radio is found more promising while newspaper and television are doing well in their limitation.

News: Internet is most favorable for young and mid aged respondents` thereafter newspaper and television. For the aged one newspaper is most satisfactory, radio comes later to it, television then after.

Sports: Internet comes first, television and newspaper thereafter in order for the young aged ones. For the mid aged television is the first choice, then internet and radio. The trend for the aged one similar to the mid age group but the level of satisfaction is slightly more.

Lifestyle: Internet is again most favorable for young. After it comes magazine, newspaper and television are at same level. For the mid aged one television and internet are the main satisfactory medium. Newspaper and magazine are the choice for the aged ones.

Adventure: Television is far ahead than any other media for all aged group. the medium is found to be more satisfactory towards the younger aged side. Internet and book is at second and third satisfaction level.

Devotional: After television, book and magazine were the choice for the young aged group. For mid aged group magazine comes after television. The same is with the aged respondents` but the satisfaction level a bit on higher side.

Shopping: Internet is found most satisfactory for the young aged group. Magazine comes thereafter. Mid age is following the similar trend. Even old age is also not far behind.

Hypothesis for the Fifth objective is as follows.

H.1 Young generation is more satisfied with internet media while old age with print media and mid age with television.

Result: As we have discussed in the above conclusion of individual preferences for the program and what media serve to them. We found that young aged individuals are moving towards internet for every form of content. The mid aged are still with television but a shift among themselves is observed for internet. Old age individual are with newspaper for some of their preference but television is slightly replacing the above. Even they are also founding internet as interesting medium.

References

- Klapper, J. T. (1960). *The effects of mass communication*. Glencoe, IL: Free Press.
- Katz, Elihu, Jay G. Blumer, and Michael Gurevitch. "Uses and Gratifications Research." *The Public Opinion Quarterly* 4th ser. 37(1973-1974): 509-23.
- Herzog, H. (1944). *What do we really know about daytime serial listeners?* In P. F. Lazarsfeld & F. N. Stanton (Eds.), *Radio research 1942-1943* (pp. 3-33). New York: Duell, Sloan & Pearce.
- Lasswells, H. (1948). *The structure and function of communication in society*. In L. Bryson (Ed.), *The communication of ideas* (pp. 37-51) New York: Harper & Row
- Berelson, B. (1949). *What "missing the newspaper" means*. In P. F. Lazarsfeld & F. N. Stanton (Eds.), *Communication research 1948-1949* (pp. 111-129). New York: Harper.
- Schramm, W., Lyle, J., & Parker, E. (1961). *Television in the lives of our children*. Stanford, CA: Stanford University Press.
- Lazarsfeld, P. F. (1948a). *Communication research and the social psychologist*. In W. Dennis (Ed.), *Current trends in social psychology* (pp. 218-273). Pittsburgh: University of Pittsburgh Press.
- Cooley, C. H. (1909). *Social organization*. New York: Scribner's.
- Munsterberg, H. (1916). *The photoplay: A psychological study*. New York: Appleton & Company.
- Charters, W. W. (1933). *Motion pictures and youth: A summary*. New York: Macmillan.
- Shuttleworth, F. K., & May, M. A. (1933). *The social conduct and attitude of movie fans*. New York: Macmillan.
- President's Research Committee. (1933). *American civilization today: A summary of recent social trends*. New York: McGraw Hill.

-
- Cantril, H., & Allport, G. W. (1935). *The psychology of radio*. New York: Harper & Brothers.
 - Cantril, H., Gaudet, H., & Herzog, H. (1940). *The invasion from Mars: A study in the psychology of panic*. Princeton, NJ: Princeton University Press.
 - Hovland, C. I., Lumsdaine, A. A., & Sheffield, F. D. (1949). *Experiments on mass communication*. Princeton, NJ: Princeton University Press.
 - Lazarsfeld, P. F. (1940). *Radio and the printed page*. New York: Duell, Sloan & Pearce.

'ANCIENT TO GST ERA JOURNEY OF INDIAN ECONOMY : AN ECO-POLITICAL APPROACH'

Dr. Lal Mrigendra Singh Baghel* & Dr. Anupama Srivastava**

Abstract

In this paper, an attempt has been made to describe the journey of Indian Economy from ancient to GST era. History of Indian economy is all about the development of the economy from ancient times. A fact emerged that India had great economy in the past era. During Maurya Empire rules, India's trade flourished all over the world and Indian economy was very good. The next 1500 years saw India with many rulers and is known as the largest economy of the world that dates back to the 1st and the 17th centuries AD. In the period of Maurya and Rajputana rules, India's cottage and small industries like textile, crafts, leather and food processing started to develop with further developments in agriculture sector. But hierarchy in the Indian society which later on became stronger day by day when British East Company finally got political control and began to exploit Indian resources and wealth of India was drained badly. Unfortunately, the industrial infrastructure of India was in a pathetic state after 200 years of British rule and thus, British rulers were responsible for ruining the Indian economy to a large scale through their Rules and unwanted and forced reforms. They changed the whole scenario of the most powerful economy of the world to decline from its position from 22.3 % in 1700 AC to a drastic dip of 3.8% in 1952. Independence was gained after much efforts and sacrifices by great

* Associate Professor (Econ.), Editor-Indian Journal of New Dimensions, Dept. of Economics, J.N.M.P.G. College, Barabanki (UP).

** Associate Professor & Head, Dept. of Political Science, J.N.M.P.G. College, Barabanki (UP).

Indian peoples and freedom fighters. After independence in 1947, India began to plan carefully its needs and resources through planning commission. The fastest-growing part of the economy has been started since the period of liberalization in 1991 but without taking India's biggest and most ambitious Tax Reform known as GST (Goods & Services Tax), this article can't be justified. Hence in this paper, journey of Indian economy from ancient period to GST era has been taken into the consideration.

Keywords: *Indian Economy, GST, Era, Economy, India.*

History of Indian economy is all about the development of the economy from ancient times and hence can be traced back to the time of ancient Indus Valley civilization to the present era of 21st century. Instead of being nomads, humans had started learnt here in BHARAT BHUMI how to settle at one place, they learnt how to cultivate and do farming and they invented farming tools like plough. They have also domesticated animals. With the discovery of metals, tools were made out of metals like bronze, copper, tin etc. The main economic activity of people during the Vedic Age was agriculture, hunting, trading horse, elephant, camel, and milk producing cattle animals. Thus, with the introduction of agriculture, the Civilization in Indus Valley had a flourishing economy. In the mean time, they started trading various commodities and developed trade links with other Countries especially with the Middle East Countries. With the time, they started to go towards urbanization and many urban centers started to develop across the country mostly in the northern and western part of India. All these development, boosted economic growth and India started to establish trade relations with the South East Asian Countries and Roman Empire too up to some extent. Thus, conclusion emerged that India had great economy in the past era, which can be also seen by the importance notes given on its validity by the well known Economic Historian Angus Madison. According to him, 'India was the richest country in the world and had the

world's largest economy until the 17th century AD'. During Maurya Empire rules, India's trade flourished all over the world and Indian economy was very good. The next 1500 years saw India with many rulers and is known as the largest economy of the world that dates back to the 1st and the 17th centuries AD.¹

In the period of Maurya and Rajputana rules, India's cottage and small industries like textile, crafts, lather and food processing started to develop with further developments in agriculture sector. At that Most of the population were engaged in such activities while so many other small employees, workers, social activists has also came into light such as lohars, carpenters, barbers, goldsmiths, weavers, ayurvedic practitioners, gurukul teachers etc. By this time, coins had also come into the existence and use which were used for purchasing commodities and materials. Although, In the Indian villages, mostly barter system was widely prevalent but in the urban areas coins has been used for buying the things. Moreover, as time went by, caste system (Varn-Vyavashtha) came into existence in Indian society after then the profession of a person was decided by the caste in which he was born. This was much prevalent during the rule of Indian kings and princes. This formed a hierarchy in the Indian society which later on became stronger day by day. India never ran out of royal riches and was known as the Golden Bird. This is what attracted foreign rulers to come and establish their kingdoms in India. These foreign invasions were the Turks, Mughals and British. Indian wealth was plundered by them and accumulated by exporting exotic items like spices & dry fruits, Kashmiri shawls, cotton textile and handicrafts, muslin, and diamonds etc. in exchange for gold and silver. During the medieval age, the Mughals and other emperors encouraged the growth of small scale industries like pottery, meat, wooden and handicrafts. The Europeans mainly Dutch, Greece, British came in the 16th century to develop their trade prospects with India. They were interested basically in spices, ethnic handicrafts, cotton etc. Among the various European nations, the British proved themselves to be the strongest and broke

the trade monopoly of Dutch. The British East Company finally got political control and began to exploit Indian resources and wealth of India was drained badly. Unfortunately, the industrial infrastructure of India was in a pathetic state after 200 years of British rule. On the other side, strong trade sector of India Small scale industries had suffered badly during British rule and were facing near extinction.

Thus, till the 17th century, India was not totally under the rule of the British and hence it was not yet plundered by British colonial rulers. Some earlier Studies have revealed that the gross domestic surplus goods contributed the world's 25.1% economy. It was estimated to be the second largest in the world, more than the treasury of Great Britain. After that, everything has been changed and India saw a sharp decline in its economy. British rulers were responsible for ruining the Indian economy to a large scale through their Rules and unwanted and forced reforms. They changed the whole scenario of the most powerful economy of the world to decline from its position from 22.3 % in 1700 AC to a drastic dip of 3.8% in 1952. After a few years of hard work of Government of India, the gross economy which during the British was 2.3% reached to a stable height and now today our COUNTRY is the 10th largest economy in the world and the 3rd largest by purchasing power parity (PPP). On per capita basis, it ranks 130th in the world and 127th by PPP. India is tenth in the world in factory output. According to the WTO, India is one of the G-20 major economies, a member of BRICS and a developing economy that is among the top 20 global traders. Although, India is a developing and agrarian diverse economy where more than half of the work force is in agriculture, but, services are the major source of economic growth, accounting for nearly two-thirds of India's output with less than one-third of its labor force. Agriculture, forestry and fishing constitute around 12 percent of the output, but employs more than 50 percent of the labor force. Manufacturing accounts near to one-fifth of GDP, construction for another 8 percent and

mining, quarrying, electricity, gas and water supply for the remaining 5 percent. Not only this, in 2013, India was the 19th-largest merchandise and the 6th largest services exporter in the world; it imported a total of \$616.⁷ billion worth of merchandise and services, as the 12th-largest merchandise and 7th largest services importer. India joined the club of trillion-dollar economies six years ago and it will undoubtedly double its size to 2 trillion dollars because of economic reforms and globalization in early 1990s, but some numbers still remain disappointing. More than 40 percent live on little more than \$1.00 per day and more than 25 percent live below the national poverty line.

Independence was gained after much efforts and sacrifices by great Indian peoples and freedom fighters. After independence in 1947, India began to plan carefully its needs and resources through planning commission. Planned economic development was the call of the hour. The focus was on developing large scale and heavy industries. The state controlled the economic policies of development. A blend of liberalization, privatization and globalization was pursued to achieve desired results. The economy was essentially mixed in nature with a blend of capitalism and socialism that has led India to the present state. Thus, after independence, annual Growth Rate of India's GDP averaged 5.82 percent from the beginning of its planning year 1951 until 2014, reaching an all time high of 11.40% in the first quarter of 2010 and a record low of -5.20 percent in the fourth quarter of 1979. In the three decades after India's independence, its per capita income increased at only around 1% annualised rate. The low annual growth rate of the Indian economy stagnated around 3.5% from 1950s to 1980s, while per capita income averaged 1.3%. While at the same time period, some other Asian have performed better such as Pakistan grew by 5%, Indonesia and Thailand by 9%, South Korea by 10% and Taiwan by 12%. While in the first decade of 21st century, India has shown that it can grow at near double-digit rates. The growth momentum continued till 2007 until the sub-

prime crisis of the US got globalised. Fortunately India was not much affected by the US created sub-prime crisis primarily because of strong Indian banking system which has had a spring-cleaning only a decade back immediately after the process of liberalization. In spite of so many hurdles, India joined the club of trillion-dollar economies and by 2012, India has emerged as the third largest economy on the globe with GDP of US\$ 4.46 trillion (on PPP basis); its per capita income had risen to US\$ 3400.²

On the other side, Undivided Uttar Pradesh (UUP) attained respectable growth in gross state domestic product (GSDP) only during the period of 1986-87 to 1990-91 with respect to the all-India performance. Slow growth occurred in all the three sectors of agriculture, industry and services. While real GSDP was slowing down, the population growth rate was among the highest in the country. During the post-reform period of 1993-94 to 2000-01, the real GSDP at factor cost (1993-94 prices) in divided Uttar Pradesh (UP) had an average annual growth of 4.22% as against all-India figure of 6.3%. While During the period of 2001- 02 to 2002-03 the average annual growth has been just about 2.24% as against all-India average of 4.88 per cent. Anyway, India has emerged as the fastest growing major economy in the world as per the CSO and IMF. According to the Economic Survey 2015-16, the Indian economy will continue to grow more than 7% in 2016-17. The improvement in India's economic fundamentals has accelerated in the year 2015 with the combined impact of strong government reforms, RBI's inflation focus supported by benign global commodity prices. India was ranked the highest globally in terms of consumer confidence during last quarter of 2015, continuing its earlier trend of being ranked the highest during first three quarters of 2015. According to IMF World Economic Outlook Update (January 2016), Indian economy is expected to grow at 7-7.75% during FY 2016-17, despite the uncertainties in the global market. The Economic Survey 2015-16 had forecasted

that the Indian economy will growing by more than 7% for the third successive year 2016-17 and can start growing at 8% or more in next two years.

The steps taken by the government in recent times have shown positive results as India's gross domestic product (GDP) at factor cost at constant (2011-12) prices 2015-16 is Rs 113.5 trillion (US\$ 1.668 trillion), as against Rs 105.5 trillion (US\$ 1.55 trillion) in 2014-15, registering a growth rate of 7.6%. The economic activities which witnessed significant growth were 'financing, insurance, real estate and business services' at 11.5% and 'trade, hotels, transport, communication services' at 10.7%. According to a Goldman Sachs report released in September 2015, India could grow at a potential 8% on average during from fiscal 2016 to 2020 powered by greater access to banking, technology adoption, urbanization and other structural reforms. According to The World Bank, India's per capita income is expected to cross Rs 100,000 (US\$ 1,505.4) in FY 2017 from Rs 93,231 (US\$ 1,403.5) in FY 2016. The International Monetary Fund (IMF) and the Moody's Investors Service have forecasted that India will witness a GDP growth rate of 7.5% in 2016, due to improved investor confidence, lower food prices and better policy reforms. Besides, according to mid-year update of United Nations World Economic Situation and Prospects, India is expected to grow at 7.7% in 2016. As per the latest Global Economic Prospects (GEP) report by World Bank, India is leading The World Bank's growth chart for major economies. According to Minister of State for Finance, Indian economy would continue to grow at 7 to 9% and would double in size to US\$ 4-5 trillion in a decade, becoming the third largest economy in absolute terms. Furthermore, initiatives like Make in India and Digital India will play a vital role in the driving the Indian economy.³

In the post liberalization era, the fastest-growing part of the economy has been its services sector but manufacturing industry has held a constant share in GDP. The fastest growing sub-sectors

of Service sector are the construction, telecom, software and information technologies, infrastructure, tourism, education, health care, travel, trade, banking and other components of its economy. Currently, the manufacturing sector in India contributes over 15 per cent of the GDP. The Government of India, under the Make in India initiative, is trying to give boost to the contribution made by the manufacturing sector and aims to take it up to 25 per cent of the GDP. Numerous foreign companies are setting up their facilities in India on account of various government initiatives like Make in India and Digital India. Prime Minister of India has launched the Make in India initiative with an aim to boost the manufacturing sector of Indian economy. This initiative is expected to increase the purchasing power of an average Indian consumer, which would further boost demand, and hence spur development, in addition to benefiting investors.

However, barely three centuries ago, was India the leading economy of the world, accounting for 32% of the global GDP (Angus Madison, 2005⁴). Europe and later on the North America, propelled by the Industrial revolution, led the world till the close of the twentieth century. As per the 2011 statistics from IMF (2012), the combined GDP of the Asian giants - China, India and Japan- account for 26 % of the global GDP while USA the global leader accounts for 20%. In the years to come this balance is expected to shift rapidly towards Asia. A well-known growth economist at Harvard, Dani Rodrik, and an Indian economist at the IMF, Arvind Subramanian⁵, continuing a line of work pioneered by American economist Brad DeLong, have argued that the acceleration in Indian growth really came long before 1991, which is from when reformers had liked to date it. They claim there is evidence that growth speeded up in the mid-1980s.⁶ Thus, it is clearly said that as a result of India's economic liberalization reforms, 1991, industrial sector of India underwent significant changes and as resultant, it has handled the change by squeezing costs, revamping management, and relying on cheap labour and new technology.

So for the constraints of Indian economy are concern, there are so many constraints on economic growth of India which has discussed here. Some of them can be short listed as: Over Population, Extreme poverty, Infrastructural gaps, unemployment crisis, low agricultural productivity, lack of power supply, excess of traditional education of masses, regional and income disparities, low per capita income, relatively low level of FDI, unbalanced industrial set up within the states, high levels of bureaucracy, high levels of borrowing and debt, least number of tax payers, unorganized distribution of occupations, huge population of unskilled and marginal laborers and farmers, faster degradation of forests land, encroachment and unnecessarily uses of agricultural land, urbanization in productive farm land, lack of political willingness and minimization of ethical politics, enforcement of politically motivated agenda/manifesto unhealthy atmosphere for foreign investors, and at last, but not the least, existence of naxalism, corruption, regionalism, and terrorism etc.⁷

In spite of so many advantages and having large science and technology establishments, two sectors of our economy which pose a major challenge and they are agriculture and the power sector. Here, the farm economy can be consider as primarily constrained because of relatively low levels of yield in major cereal crops and pulses as compared to other Asian economies especially China. Thus, necessary steps should be taken by the government to revitalize the traditional crop agriculture which is vital to food security and farm income. The second challenge for the country is the shortage of physical infrastructure in which the most important item is electricity. Shortage of electric power leads not only to direct production losses but also results in inefficiency in a broad range of areas impacting profitability and competitiveness. As it is obvious that Government is the largest player in production, transmission and distribution of power and a high order of Government intervention in capacity creation and other supportive

components of electricity business are crucial to sustaining a high growth rate of 8 to 10%. Therefore, a more aggressive and advance path of capacity creation must be started as early as possible. Constraints such as the availability of coal, land acquisition and environmental issues need to be tackled so that the desired growth in capacity expansion can be achieved⁸. Recently, the OECD (Organization for Economic Cooperation & Development) said that "India's growth should be stable over 2015-19, but the prospects could change depending on the implementation of reforms by the new Modi government".⁹ Most of the Economists have same views as we are pointing here that the coming decade will be crucial for India. If India grows at 7 to 9% per annum, it is estimated that per capita GDP will increase from the current level of US\$1,600 to US\$ 5000-8,000 by 2025 where it will transit from being a low income country to a middle income country. Economics sources says, the GDP growth rate of India has been exceeding Japan mainly due to the higher population growth and will become most populous country of the world up to 2030.

Without taking India's biggest and most ambitious Tax Reform known as GST (Goods & Services Tax), this article can't be justified. As we all are the witnessed of its implementation in Indian Economy. In the mid-night of 30th June, 2017, GST has been imposed in our country and implemented from July 1, 2017. The main idea behind introducing GST is to improve the economy of the nation. A single undivided Indian market would strengthen the economy and make a nation, powerful as well. It is a single national uniform tax levied across the country on all goods and services. All goods and services have been placed under four slab rates - 5, 12, 18 and 28 percent - along with a cess on luxury and demerit goods such as tobacco, pan-masala and aerated drinks. Most services, except those in the negative list of essential services such as healthcare and education, comes under GST. Journey of GST implantation has been taken almost 11 years, three governments and three Finance Ministers¹⁰.

In addition to this, I would like to share that there are approx. 140 countries in World where GST has already been implemented some of the popular countries being Australia, Canada, Germany, Japan, and Pakistan to name a few¹¹. Implementation of GST impacts a nation both ways, positively and negatively. Ignoring negative aspects, positive aspects can be taken into consideration, in order to improve the economy of the country. Thus, GST is a single taxation system that will reduce the number of indirect taxes. While earlier, indirect taxes were charged as central excise, VAT, service tax, etc. but now from 1st July of 2017, a single taxation term would cover all of those indirect taxes. The Prices of products and services would reduce so this system would prove to be beneficial for the people who are fed up of paying huge prices. This would reduce the burden from the state and the central government. Presently separate taxes are levied on goods and services. With the introduction of GST, all of these indirect taxes came under a single roof. GST would not be charged at every point of sale like other indirect taxes so this way, market would be developed. It will enhance market and on the other side, GST would introduce Corruption-free taxation system. In the present scenario, the tax is levied at the time of product release from the manufacturing site, and after that retailers also pay it. It will improve quality of Indian Exports, more opportunities for employment, enhanced economy growth, and will reduced burden on central and state government. According to the latest reports, the introduction of GST would help India to gain \$15 billion every year. Niti Aayog vice chairman Arvind Panagariya recently said that the Indian economy will see an over three-fold expansion at \$7.25 trillion by 2030 and clock an average growth rate of 8 per cent over the next 15 years.

Finally, to achieve sustainable growth and future goal, we have to overcome the low growth phase as quickly as possible. To ensure that, Government has launched a number of schemes aimed

at broadening the base of growth which has made a substantial demand on public expenditure. India joined the club of trillion-dollar economies six years ago and it will undoubtedly double its size to 2 trillion dollars because of economic reforms and globalization in early 1990s, but some numbers still remain disappointing which are more than 40% live on little just near to \$1.00 per day and more than 25% live below the national poverty line. There are so many facts behind disappointment which already discussed earlier, but some of them still alarming need to be resolved are: rapid and uncontrolled growth of unproductive population, huge population of marginal farmers-unskilled labours, traditional education system, lack of employment opportunities, lack of motivation, low per capita land holding, low agricultural productivity, shrinking area of sowing-cultivation, declining of village, cottage and small industries, excessive or deficient rain, frequent flood & Famine, natural disasters, and so on.

References

1. Maddison, Angus (2006). *The World Economy - Volume 1: A Millennial Perspective and Volume 2: Historical Statistics*. OECD Publishing by Organisation for Economic Co-operation & Development. p. 656.
2. CIA World Fact Book.
3. <http://www.sabblokcity.com/tag/indian-economics/>
4. Maddison, A (2005), *Growth and interaction in the world economy: the roots of Modernity*, AEI Press, Washington DC.
5. Dani Rodrik, Arvind Subramanian (2004), "Hindu Growth to Productivity Surge: The Mystery of the Indian Growth Transition", NBER Working Paper No. 10376, National Bureau of Economic Research, Inc. Issued in March 2004
6. www.unc.edu/depts/diplomat/item/2006/0406/.../williamson_india.html
7. Novotný, J., Ramachandran, N. (2010): *Alternative to Jobless Growth? All-India Context and a Case of Participatory Development Scheme from Rural Tamil Nadu*. *Geografie*, 115, 3, 330-346. [Http://Web.Natur.Cuni.Cz/~Pepino/Novotny_Ramachandran_2010](http://Web.Natur.Cuni.Cz/~Pepino/Novotny_Ramachandran_2010)
8. C. Rangrajan, eac.gov.in/aboutus/chspe/spe_indian.doc
9. <http://africanfinancialnews.com/india/news/indias-economic-prospects-depend-on-reforms-OECD>
10. <http://www.moneycontrol.com/news/business/economy/goods-and-services-tax-all-that-you-wanted-to-know-2315465.html>
11. www.essayonquotes.com

Bibliography

1. *India Country Overview 2008*. World Bank.
2. Ranjit K. Sau (1972): *Indian Economic Growth*, EPW, Vol. 7, No. 5-6-7, Feb., 1972.
3. "CIA - The World Factbook - India". CIA. 20 September 2007.
4. "Economic Structure". *The Economist*. 6 October 2003.
5. "Indian Manufacturers Learn To Compete". *The Economist*. 12 February 2004.
6. Gordon, Jim and Gupta, Poonam (2003). "Understanding India's Services Revolution" (PDF). 12 Nov., 2003.
7. *What's Next For The Startup Nation* [Http://Www.Startup-Nation.Com/The-Book/](http://Www.Startup-Nation.Com/The-Book/)
8. Centre For Media Studies (2005). "India Corruption Study 2005: To Improve Governance Volume - I: Key Highlights". Transparency International India.
9. Sengupta, A., Kannan, K. P., Raveendran, G. (2008): *India's Common People: Who Are They, How Many Are They and How Do They Live?* EPW, 43, No. 11, Pp. 49-63.
10. "Child Labour and India". Embassy of India, Washington, DC. Retrieved 28 November 2007.
11. Gleick Ph. 1993. *Water in Crisis*. New York: Oxford University Press.
12. Russell Hopfenberg And David Pimentel *Human Population Numbers As A Function Of Food Supply* Oilcrash.Com National Geographic Society. 1995. *Water: A Story of Hope*. Washington (DC): National Geographic Society
13. Christiani DC. 1993. *Urban and Trans-Boundary Air Pollution: Human Health Consequences*. Pages 13-30 In Chivian E, Mccally M, Hu H, Haines A, Eds. *Critical Condition: Human Health And The Environment*. Cambridge (Ma): Mit Press.
14. Burns Jf. 1996. *Denial and Taboo Blind India To The Horror Of Its Aids Scourge*. New York Times, 22 September: A1.
15. wikipedia.org/wiki/Economy_of_India.
16. "A Special Report on India: Ruled By Lakshmi". *The Economist*. 11 December 2008. Retrieved 12 July 2009.
17. Chatterjee, P. (2007): *Child Malnutrition Rises in India Despite Economic Boom*. *The Lancet*, 369, No. 9571, Pp. 1417-1418.

LASTING IMPRESSIONS

Dr. Ram Shankar Yadav*

Man passes through various experiences scenes and sites in his life. But human mind is not a remembering machine; that is to say, it does not contain everything permanently. Exactly, the same is the case with our hearts also. In everyone's life there are some occurrences which one cannot forget till one's last breath. The happiness or scenes which appeal directly to mind or heart leave their deep impression. In the course of life of my own, there have been many events, places, Practices and sweet or sour experiences that have left everlasting impression on my heart and mind. In this regard, the very first phase of Indian life matters much. I would like to share a few.

Born and brought up in a backward family at a small village of Ayodhya, I enjoyed wildlife with my silly friends. My Parents, like most of others were not concerned about my career. But they focused on good health. Education did not mean more than going to school with a mind to keep me off wells, fire, and doing acts of mischief. I had nothing to boast of save my parental religiously as almost every member of my large family, in his or her fifties, was a vegetarian and licensee Ram Bhakta connected with ManiramChhawani, Ayodhya. My mother also was a licensee Bhakta and visited Hanuman Garhi and would take baths in the Saryu with a good number of village-women. They were of the opinion that such visits would help them making their next life prosperous and satisfactory. To accompany her to Ayodhya, for me, was not less exciting than going to a movie for modern children.

Having taken the examination of High school, I went to the religious town with three cousins of my own family. We got the blessing of the Saryu and reached the Hanuman Garhi very

* Associate Professor, Department of English, J. N. M. P. G. College, Barabanki, U.P.

hurriedly, purchased Desighee laddus, put them in green donas and marched towards Hanuman Ji. People were thronging upon one another with their stretched hands full of laddus to place donas exactly in the mouth of Hanuman Swami which was almost impossible for common devotes. However, a few, huge-bellied Mahajans were allowed as they offered heavy cash amount also in the name of Dakchhina. I noticed a priest thereat who was around 30 years. Some old men and women, who were unable to grapple with the crowd, threw their laddus aiming at the right point of the statue but the act irritated the priest as some laddus fell on his hands and he scolded them badly. On such a second occurrence, he abused like a vulgar man. I began to ponder over faith and reality. I drew my hand back with laddus and looked around. I found that within no time, I was surrounded by a band of monkeys. I offered all the laddus to them in place of throwing to the statue. As long as I was there, observed the young priest and found that he preferred cash to laddus and young female visitors to old pilgrims.

Seeing all the activities over there, my long-cherished faith in the Temple was shaken. During my graduation, I visited the Temple several times only with a little amount of my own or very often, with my fellow students with a plan to get more laddus at less payment which was easily possible therefrom. To my great surprise, I happened to see some notorious criminals and vicious people who looked fully relaxed after offering laddus and cash in the Temple. More than this, as far as I know, nothing happened so as to make them realize their crimes.

Gradually, I lost faith in such types of activities. Kali-worship and annual religious feast at my village made me serious. All the villagers collected wheat-grains from every family in the name of Chanda for Kali Mata. In this ritual, only Brahmins were invited to eat puris and all that was left after their gobbling up to mouth,

was called 'Prasad'. Young ones of the Brahmins were given three to five puris as the Prasad whereas non-Brahmins children of the village were given only some scraps. While doing my Post Graduation, I managed a change by making a separate practice of worship without Brahmins and it was liked by all the farmer families and labors.

Despite my best possible endours, my upbringing did not allow me to become an Atheist. In Nineteen nineties, I had to go to Allahabad several times, I heard people talking of a temple situated in the civil lines area of the city.

However, after a long period I thought of visiting the temple with restored faith. I went to the temple around the sunset. Fortunately, it was a Tuesday. I was very surprisingly glad to know that cash payment as charity was not acceptable in the temple. I entered the premisis and found that almost two dosens of college boys and girls were talking about their friendships and entertaining themselves with one another, escaping their parents' eyes. On the other side, some government employees were bargaining with their own clients. It was a safe place for accepting hushed money. In the left corner of the temple, there were three or four sweet-shops full of laddus and pedas which were claimed to be prepared with desighee and consequently costed almost five times more than market rates. At last, I came to know that the shops were run indirectly by the Mahantha himself. Nobody was constrained to purchase sweets for offerings but at the same time, none was allowed to enter with sweets from outside-shops or even home-made ones.

During the Arti session, devotees assembled with donas full of laddus or pedas which were accepted and one may say, deposited in the GarbhaGriha. Young students, lovers-beloveds, office employees with their clients attended the Arti very late and reluctantly. Exchange offers were freely done.

There was nothing unexpected at the site for me. But the little faith regarding temples, was ultimately, shattered to pieces. It was the last test of my own regarding religious places and thence, I could not go to such places in search of any divine quest, blessings or the like. My personal experiences, though a little, made me confident, no matter, what the people think about my approaches.

The visits of religious places bring me to the conclusion that "Religion is not for empty bellies." It becomes well only to well-to-do ones and exploits average people. For intellectuals, if they are, in real sense, "in the matters of conscience, the Law of majority has no place."

We cannot think of India and Indians without temples and religions respectively. the speed of Indian in regards of scientific invitations, material achievements, Hospitals, College and Universities etc. as compared to other nation is, undoubtedly, a point to be considered seriously. I don't mean that there should be religion but do affirm that there must not be malpractices in the name of religions.

According to Swami Vivekananda, religion is a weapon with which clever practitioners Kills so many innocent Indian but the criminals remains untraced .He also opined that to escape such Cunningness, everyone should have scientific temper .Fears of unseen power has made us weak. Right from birth, Indians are brought closer to blind faith rather than to nation and logic. The second decade of the 21st Century, may be safely said to be a period of a kind of renaissances for the first time in India .

It is very amazing that a cyclic change is going on very rapidly and it is bringing fourth ages old religion and rituals parallel to scientifically woven word . Even then, I feel much difficulties in questioning whether we are retreating from a real word. The current renaissances of which a majority may be proud, is neither safe nor good for the health of our nation.

References

- Banbatti, G.S. (1995). *Life and Philosophy of Swami Vivekananda*. Atlantic Publishers & Distributors, ISBN 978-81-7156-291-6.
- Chattopadhyaya, Rajagopal (1999). *Swami Vivekananda in India : A Corrective Biography*. Motilal Banarsidass, ISBN 978-81-208-1586-5.

ENTREPRENEURSHIP DEVELOPMENT THROUGH FOREST BASED MSMES

Dr. Neetu Singh*, Dr. Lal Mrigendra Singh Baghel**

Abstract

India's vast forest wealth plays an important role in environment and livelihood security of the country. However forests emerged the fact that Forests play a vital role in improving the livelihoods and alleviating poverty in the developing countries like India. This paper analyses various arguments in the debate between forests based small scale entrepreneurship and their role in economic growth. The paper also discusses the various aspects of MSMEs and their impact on economic development with the help of review of past literature. MSMEs are companies with metrics (usually number of employees or annual turnover) that fall below a certain threshold. Small Medium Forest Enterprises (SMFEs) are an industry-specific type of small and medium enterprise (SME) situated within the forest sector. Unfortunately, it is even difficult to unravel a meaning for SMEs, with standards varying from country to country. The contribution of the forestry sector to the economic and social development can be increased by providing necessary support for the establishment and development of SMEs that base their business on forests. To properly plan the development of the private forestry sector and ensure the development of SMEs in forestry, it is necessary, in addition to wood products, to pay special attention to non-wood forest products. MSME can be the backbone for the existing and future high growth businesses with both domestic and foreign companies investing in the 'Make in India' initiative and make

* Associate Professor Dept. of Economics, Navyug Kanya Mahavidyalaya, Lucknow (U. P.), Email: neetu.singh1380@gmail.com

** Associate Professor (Econ.), Editor-Indian Journal of New Dimensions, Dept. of Economics, J.N.M.P.G. College, Barabanki (UP)

significant impact in the area of indigenization. 'Make in India with zero defect and zero effect', is a significant opportunity. Prime Minister Modi's new wave 'Make in India' should enable the development of forest based MSME business faster in the future.

Keywords: MSMEs, SMEs, Forest, Entrepreneurship, Development. India.

Historically, forests have played a major role to influence Patterns of economic development of an economy, supporting livelihoods not only for human but also for the habitat living in and around the forest, helping structure economic change, and promoting sustainable growth (Williams 2002). Historical evidence also indicates that the early societies comprising mostly hunting-gathering households depended on forests for nearly all of their livelihood needs. The agricultural transition translated into deforestation for cultivable land at a scale that was limited only by available technologies, by the labor available to cultivate land and grow crops and by the presence or absence of markets. Forest provided fodder, firewood, and subsistence timber-goods for which they are still the major source for most poor households in the developing world. The extended use and exploitation of forest resources even before the industrial revolution had led to efforts to conserve forested areas and plant new trees in specific regions of the world. In Europe, France and Germany were leaders in developing policies in the 17th and 18th centuries to regulate the use of and to protect forests (Barton 2001).

Most of the studies on forests emerged the fact that Forests play a vital role in improving the livelihoods and alleviating poverty in the developing countries like India. World Bank has also pointed out importance of forests and reported that forests directly contribute to supporting the livelihoods of approximately 90% of the world's poorest people either in the form of subsistence, conversion of forests to agricultural uses, or income derived from a diverse range of timber products, non-timber products, or ecosystem services (Arnold, 2001). Although there is no universally

accepted definition of small and medium enterprises (SMEs), other than to say that they are companies with metrics {usually number of employees or annual turnover) that fall below a certain threshold. Small Medium Forest Enterprises (SMFEs) are an industry-specific type of small and medium enterprise (SME) situated within the forest sector. Unfortunately, it is even difficult to unravel a meaning for SMEs, with standards varying from country to country (Ayyagari et al., 2003).

It is to be noted here that during the pre- independence era, the forests in India were owned by the public, princely states and individuals. Only those forests which were owned by the public were put under working plans for management. The past history of Indian forest clear throws a picture that India had rich forest and forest resources in the past due to favorable climatic conditions, extending over major part of the country. Clearing of forests for cultivation, food, shelter and pasture and selective removal of valuable timber trees adversely affected the resources. The owners of the forests were interested only in collection of revenue. In the early days of establishment of British rule in 1800s, the accessible forests suffered due to large scale felling of valuable timber trees. The forests of western coastal tract were heavily exploited for teak and other timber required for the Navy. Later, Britishers began to realize that forests were not so inexhaustible and there was need for conservancy, leading to introduction of systematic working and regeneration measures.

In India, the MSMED Act, 2006 defines the Micro, Small and Medium Enterprises based (i) on the investment in plant and machinery for those engaged in manufacturing or production, processing or preservation of goods and (ii) on the investment in equipment for enterprises engaged in providing or rendering of Services. The investment in plant and machinery is the original cost excluding land and building and other items specified by the Ministry of Small Scale Industries, The Government of India

enacted the Micro, Small and Medium Enterprises Development (MSMED) Act, 2006 including definitions of micro, small and medium enterprises.

Economic development depends to a large extent on the active and enthusiastic participation of intelligent entrepreneurs in the economic process (Schumpeter, 1967, p. 621), while Haggens E (1961, pp. 191-224) have pointed out that the economic development is seen almost exclusively as a process of technological change which is brought in by the creativity of the entrepreneurs. Studies have shown that small-scale industries in many countries provide the mechanism for promoting indigenous entrepreneurship, enhancing greater opportunities per unit of capital invested and aiding the development of local technology (Nils-Henrik and Morch, 1995). Research work on small-scale industries has shown that small-scale forest-based processing enterprises form a very large part of the overall forest products processing total in employment terms (FAO, 1995). Thus, in any country, economic developmental activities are centered on the entrepreneurship of the people of that country. The forest based small scale industries are the hub of many economic activities in a developing country like India. The social economic transformation of India cannot be achieved without paying adequate attention to the development of this labor intensive and capital sparing factor (Prasain & Singh, 2007, p.13).

Poverty eradication has been the major goal of small enterprise development in most developing countries. The small and medium scale industries represent 80 percent of industrial base of most of the developed countries (Mathew, 1999, p. 23). The role played by these industries in the economic activity of advanced industrialized countries is also very significant. In modern India the small scale industries have been a success story, they have emerged vibrantly in the face of rising threats from large scale sectors inside the country and of multinationals from abroad.

The small scale units constitute about 95 percent of the total industrial units and produce more than 7500 products with associated technology varying from traditional to state of the art (Suryanarayana & Krishnamohan, 2005, p. 11).

In addition, small enterprises provide employment to nearly 20 million persons, account for about 40 percent of the value added in the manufacturing sector. 34 percent of total national export and 7 percent gross domestic product. Hence, the role of SMEs sector in the economic development has been a matter of great concern for policy makers, researchers, national and international agencies. The growth of Small Scale Industries Sector has been a dominant feature of Indian economic development strategy since independence (Neetubala, 2007, p.9). While on the other side, Christopher's (1974, p.109) study revealed that economic gain as the most important reason for starting the small industrial units. High demand for the product perceived, was the most encouraging factor. He further highlighted that the basic rationale of developing SMEs is that they provide additional employment opportunities and ensure more equitable distribution of income and better standard of living.

India has 78.29 million ha of forest and tree cover which is 23.81% of the geographical area as against a target of 33% envisaged by the National Forest Policy 1988. The total growing stock of the country's forests and tree outside forest is estimated at 6047.15 million cum which comprises of 4498.73 million cum inside the forests and 1548.42 million cum outside the forests. The total carbon stock in the country's forest is 6553 mtonnes (Forest Survey of India, 2011). Forests procure 3.175 m cum of timber and 1.23 m tonnes of firewood annually. The total annual consumption of fuelwood for the country is estimated at 216.42 m tonnes out of which 58.75 m ton comes from forests. Of the total population using fuel wood, 23% obtain fuel wood from the forests. It is estimated that about 200 million people live in and

around forests and fully depend for their livelihood on forest resources. Further, of the 530 million livestock population in India, about 190 million fully depend on forests either by direct grazing or by harvesting of fodder causing additional burden on the forests (ICFRE, 2010).

Forests play an important role in India's economic development in terms of their contribution to gross domestic products (GDP), employment, and livelihoods of millions of poor people, who are mainly dependent on forests. Besides, they are also the main source of meeting food, fuel, fodder and timber requirements of the forest dwellers. India has 16 different types of forests, with wide range of flora and fauna. These forests meet the basic requirements of millions of forest-dwelling communities. They contribute significantly to the economy, conserve biodiversity, moderate the environment and maintain the resilience of the ecosystem (Maler 2008).

In India, forestry has been considered as a significant rural industry and a major environmental resource for the masses. India is one of the ten most forest-rich countries of the world along with the Russian Federation, Brazil, Canada, United States of America, China, Democratic Republic of the Congo, Australia, Indonesia and Sudan. Together, India and these countries account for 67 percent of total forest area of the world (Global Forest Resources Assessment 2010). India's forest cover grew at 0.22% annually over 1990-2000, and has grown at the rate of 0.46% per year over 2000-2010 (Global Forest Resources Assessment 2010), after decades where forest degradation was a matter of serious concern (FAO, 2002). As of 2010, the Food and Agriculture Organization of the United Nations estimates India's forest cover to be about 68 million hectares, or 24% of the country's area. The 2013 Forest Survey of India states its forest cover increased to 69.8 million hectares by 2012, per satellite measurements; this represents an increase of 5,871 square kilometers of forest cover

in 2 years (State of Forest Report, 2013). However, the gains were primarily in northern, central and southern Indian states, while northeastern states witnessed a net loss in forest cover over 2010 to 2012.

Apart from being a repository of valuable bio-diversity, forests are the source of most of the rivers and play a major role in water availability of the country. While on a global level there is a net loss of 7.3 mha of forest per year, the forest and tree cover of the country has stabilized which an achievement is keeping in view the demographic pressure on its forests. Forests play a key role in providing ecological security and resilience to the living conditions of millions of people in the country. However the vital contribution is not adequately reflected in the low contribution to the GDP at 1.7%. Forest cover refers to all land more than 1 ha of area having a tree canopy density of more than 10%. Tree cover excludes forest areas of more than 1 ha which have less than 10% tree cover but includes areas outside which are more than 1 ha and have more than 10% tree cover. Small and medium enterprises (SMEs) contribute to overall economy through income, regional development, employment (social contribution), share in GDP, innovations etc. As per 10th Five Year Plan, the contribution of the forestry sector to GDP was only 1% in 1996-97 (measured at constant prices of 1980-81). An estimate of gross value of goods and services provided by forestry sector in the beginning of 21st Century puts its contribution to GDP at 2.37%. Though it is extremely difficult to quantify, the economic value of the ecosystem services of the forests is vast. It is also generally agreed that much of the land-use decision that presently drives forest change takes relatively little account of these values. The challenge for policy makers is, therefore, to bring these values into the markets, cross-sectorial decisions, macro-economic policy making, and into the development of economy in general. Therefore, the knowledge regarding the factors which affecting this sector and its characteristics is important, both for countries with developed

market economies and for those with economies in transition. European countries like Serbia, small and medium enterprises are recognized as a pillar of economic development.

In India, the MSME opportunity is to develop entrepreneurship and support growth led by innovation over the next decade by: (i) Significantly increasing the share of MSME contribution to GDP from the current 8 per cent to 15 per cent by 2023-25 (ii) Generate employment levels to the extent of 50% of the overall employment, more than doubling the current MSME workforce of 106 million across agricultural, manufacturing and services sectors': and (iii) Increasing the share of MSME contribution across key public and private industry sectors fulfilling increasing domestic demand, growth in exports, indigenization and import substitution. In an UNECE report, they stated that "...the core of the political and economic transformation of any country in transition is the creation of the private sector, the development of entrepreneurship and creation of small and medium sized enterprises". They are considered to be one of the principal driving forces in economic development" (UNECE, 2003). SMEs have a positive impact on the development of private ownership, entrepreneurial skills, job creation and diversification of economic activities, and can quickly adapt to market changes, contributing significantly to the trade and export (UNECE, 2003). When it comes to forestry, the situation is more complex, because it is a very specific area of the country's economy. In that sense, as forestry in India is also in process of transition, with all sectors' characteristics, it is important to know the mechanisms and factors which influence the formation and development of SMEs in forestry sector.

The contribution of the forestry sector to the economic and social development can be increased by providing necessary support for the establishment and development of SMEs that base their business on forests. To properly plan the development of the private

forestry sector and ensure the development of SMEs in forestry, it is necessary, in addition to wood products, to pay special attention to non-wood forest products (NWFPs). In literature regarding SMEs for the various activities such as procurement, processing and selling of NWFP-SMEs is stated that the organization of these enterprises in India is mostly heterogeneous in nature, and production capacities are underutilized and often inadequate. One of the reasons for this may be the lack of adequate support, as it was identified that most of these enterprises do not have sufficient financial resources, nor do they have access to favorable bank loans (Nonie et al., 2013a).

It has been noticed that in many countries, there is a noticeable lack of support for development of SMEs in forestry and, if support exists, it is often inadequate or poorly targeted. Therefore, policy-makers may need policies that support the varying needs of different types of entrepreneur, rather than provide broad 'blanket' policies to all types of entrepreneur, irrespective of need or ability" (Westhead et.al., 2005). Therefore, it is essential for these reasons that decision-makers have the necessary information about the types of enterprises in the private forestry sector, or in this case, NWFP-SMEs. SMEs in India, has achieved almost steady growth over the last couple of decades. Even though, the role of forest based SMEs in the industrial sector are growing rapidly and they have become a thrust area for India's future growth. The Indian market is growing and the Indian industry is making rapid progress in various Industries like manufacturing, information technology, real estates, textile and garments, retail, engineering, pharmaceuticals, food processing, agro and service sectors. Under the changing economic scenario the forest dependent SMEs have both the opportunities and challenges before them. Its importance for rural areas cannot be ignored, since entrepreneurship based on NWFPs can have a positive impact on the sustainable development of rural areas and the population income diversification. Research in future should be focused on the specific support measures in relation to different types of NWFP-SMEs. Detailed study on the

different types of forest based SMEs is needed as a basis for formulation of subsidies/support measures in order to improve the entrepreneurship in NWFPs sector.

On the basis of above discussion, it can be said that Entrepreneurship Development makes a powerful impact on the economic development of the country. The success of the entrepreneur depends on the environmental factors such as social-political and economic, constitutional-legal, and technological factors which influence their activities thus leading to successful entrepreneurship. The socio-economic factors are the major key factors influencing the entrepreneurial behavior and operation of the business and thus the need for the study and the due influence. It can also be concluded that MSMEs segment can play a significant role in the emergence of the Indian economy. The development of this segment is extremely critical to meet the national imperatives of financial inclusion and generation of significant levels of employment across urban and rural areas and across the country. It has potential to nurture and support development of new age entrepreneurs who have the potential to create globally competitive businesses from India.

Thus, MSME can be the backbone for the existing and future high growth businesses with both domestic and foreign companies investing in the 'Make in India' initiative and make significant impact in the area of indigenization. 'Make in India with zero defect and zero effect', is a significant opportunity. Prime Minister Modi's this new wave should enable the development of forest based MSME business faster in the future. A recent report of KPMG also confirms that India's GDP is expected to touch 8.5 per cent, with the country likely to be a USD 5 trillion economy by 2025. It can't be overlook that the MSME segment has the huge potential to emerge as a backbone for India's economy and it will act as an engine for growth, given the right set of supporting environment and enabling framework.

References

- "Micro, Small and Medium Enterprises", Reserve Bank of India. Retrieved 30 December 2013.
- http://www.teriuniversity.ac.in/mct/pdf/new/assignment/Amit_Kumar_Economic_Development_and_Forest_Conservation.pdf
- CII - Micro, Small & Medium Enterprises Issues & Recommendations May 2014.
- CRISIL Report- Skilling India
- Arnold, J. 2001. *Forestry, Poverty and Aid*. Center for International Forestry Research (CIFOR), Occasional Paper No. 33. Bogor, Indonesia.
- Ayyagari, M., T. Beck & A. Dernirguc-Kunt. 2003. *Small and Medium Enterprises across the Globe: A New Database*. World Bank, Development Research Group, Working Paper 3127. Washington, DC.
- Haggren, Everett E, *How Economic Growth Begins: A study on the theory of social Change* (ISBN-0-4151-5859-1), Cambridge Mass Institute of Technology, 1961, pp.191-224.
- ICFRE, 2010. *Forestry Sector Report India 2010*. Indian Council for Forestry Research and Education.
- Lewis, F., J. Horn, M. Howard and S. Ngubane. 2004. *Small and Medium Forest Enterprise in South Africa*. Institute of Natural Resources and International Institute for Environment and Development (IIED). Discussion Paper. Pietermaritzburg, South Africa/ London, UK.
- Mayers, J. 2006. *Small- and Medium-Sized Forestry Enterprises*. International Tropical Timber Organization (ITTO) Tropical Forest Update 16/2(2006):10-11.
- Mathew P.M, *Small Enterprises and Regional Development Challenges and Choices* (ISBN-8-1739-1327-7), 1999, p.23.
- Neetu Bala, *Economic Reforms and Growth of Small Scale Industries*, ISBN-81-7629-922-7, 2007.
- Nils-Henrik and Morch von der Febr, *The African Entrepreneur: Evidence of Entrepreneurial Activity and Firm Formation in Zambia*, The World Bank, Working Papers, 1995.
- Prasain G.P and Nixon Singh E, *Small Scale Industries and Entrepreneurship*, ISBN-81-8370-096-9, 2007, p.13.
- Schumpeter Joseph A, *The theory of Economic Development*, ISBN-978-3-7908-2589-3, Oxford University Press, New York, 1967, p.621.
- Westhead, P., Ucbasaran, D., Wright, M., & Binks, M. (2005). Novice, Serial and Portfolio Entrepreneur Behaviour and Contributions. *Small Business Economics* 25(2), 109-132.

KEKI DARUWALLA : A MODERN INDIAN ENGLISH POET

Dr.Faraz Alam* & Dr. Shipra Gupta Vashishtha**

No writer can live in total isolation. He/She is a social being who is bound to be affected by his/her milieu. The primary channel of communication, at the early age, is the family. Apparently, Keki N. Daruwalla seems to be influenced by his parents, especially by his father N.C. Daruwalla. Daruwalla's birth in a Persian family in Lahore, now in Pakistan, his education in the Punjab and his chequered career in the Indian police service for about twenty-five years: all these have a great impact on Daruwalla. Besides, the poet Daruwalla, like many other Indian poets, is substantially influenced by T.S.Eliot, Ezra Pound, W.B.Yeats and others. Prof. M.K.Naik maintains that Eliot is the single most potent influence on contemporary Indian poets, including Daruwalla. Naik notes down thus: "It is especially Eliot who is too much with these poets, poetry for them seems to be almost synonymous with 'Eliotry'." Naik apparently disapproves this sort of poetic derivations.

Keki N. Daruwalla is a multi-faceted poet; His poetry presents a unique poetic experience. We can appreciate his poetry when we properly understand his views on poetry. He stands out among Indian English poetry as a range of experience generally outside the ambit of poets. His experience as a police officer has clearly helped him in this. He portrays vividly and minutely the contemporary Indian socio-political world with touches of irony and sarcasm. He exposes the evils of communal tensions, riots, exploitation, greed, criminalization of politics, dowry etc. In his famous poem

* Department of English, Bundelkhand University, Jhansi-284128

** Coordinator, Department of English, Bundelkhand University, Jhansi-284128

"Curfew in a Riot Torn City "Daruwalla frankly describes disintegration of social life by communal violence:

The starch on your Khadi back

Troms soggy, the feel of thing is queer

You wish to forget it all

The riot, the town, the people that mass of liquefied flesh

Seeking in fear.

There is a great deal of variety in Daruwall's poems. While it is largely true that much of Daruwalla's poetry can be characterized as "relative" one cannot run away from the feeling that there is moral stance in his poetry. His work may not consciously be a social gesture his ethical preferences are often obvious.

Every poet begins with the reality that lies outside him. Daruwalla's poetry is a response to that reality and as result of that transaction between nature and the poet's mind, a certain kind of poetry is born. Daruwalla is often thoughtful almost brooding, when describing a visual experience. A good deal of reflection merges with the creation of rights and sounds and this results in exceptionally powerful poetry appealing to the reader at many levels simultaneously. Daruwalla presents different attitude towards life and human perception. His poems have a sound Over nine books and more than three decades, Daruwalla's poetry has journeyed a long way both formally and thematically. However, it retains certain strong distinguishing characteristics: and ironic stance, and evocation of the multi-layered contradictory realities of Indian life, a preoccupation with diverse cultural, historic and mythic landscapes, a terse, vigorous and tensile style, supple imagism, sustained narrative drive, an ability to segue between metrical patterns and free verse, and a capacity to combine an epic canvas with a miniaturist's eye for detail.

A remarkable feature of Daruwalla's poetry is its ability to vividly materialize its abstractions, to strike a creative tension between image and statement. His poetry has the narrative energy and sweep to pant, for instance, a vast portrait of post-independence India's landscape of meaninglessness. While reading the poetry of Keki N. Daruwalla one is bound to have the feeling that he is being transported to a bizarre world no other Indo-English poet delves so deep into the mysterious inner world of the human psyche as does Daruwalla. Daruwalla writes with a vision, and the vision follows him like a shadow. While reading his poetry, the reader will have occasion to remember several poets. His attitude towards nature will remind one of Tennyson, his morbid pre-occupation with death will remind one of Emily Dickinson. His supernaturalism will remind the reader of Coleridge. His poetry as a heap of broken images will remind us of the poetic technique of T.S. Eliot. The themes of his poem include deprivation, misery, disease and death. He almost seems to contain Hardy's attitude towards life. But in actuality his corpus of poems only presents the stark reality of Indian life. Though he could have been placed at the top level of Indian poetry the critics' indifferent tendency towards Daruwalla has understated his poetic excellence. The greatness of Daruwalla's poetry is very much overshadowed by the critics' unawareness of his sound poetic quality. However, his poetic genius is acknowledged by the Sahitya Akademi Award of late, there is a surge in the interest among critics towards Keki N. Daruwalla. His impact on Indian poetry is tremendous.

His poems tend towards a prolixity and prosiness and his prosiness is praised for his bitter satiric tone which is exceptional in Indian verse. He has been one of the most daring innovators of Indian poetry in English. Never compromising either with the public or indeed with language itself, he has followed his belief that poetry should aim at a representation of the complexities of modern civilization in language and that such representation necessarily

leads to difficult poetry. Despite this difficulty his influence on modern poetic diction has immense. Daruwalla describes the ills between communities, exploitation of womankind, oppression of the poor, the minorities, etc. Such descriptions clearly indicate that the poet is wide-awake to the social issues, especially the disturbing ones, and occasionally throws up ideas as to how to improve the conditions of the people. Existential traumas have always shaken the humanity at large, and so sensitive poet would close his/ her eyes towards them. As a social realist, Daruwalla is conscious of his duties and responsibilities and he dispenses them with all seriousness.

Daruwalla makes use of irony and collocation in his narrative method. Today, irony is regarded as a powerful tool of expression, and it is effectively applied when one thing is said to mean another thing. Irony and collocation do not allow a poet to be subjective in his expression; they rather make him more objective, witty and biting. Like irony, collocation is also an effective tool of articulation. This literary device enables a reader to place two texts or authors side by side and make a relevant comparative or contrastive study.

As the poet is a keen observer of Indian society, Daruwalla makes pertinent comments on social customs and manners on religious practices and traditional rituals, and on Hindu gods and goddesses. Usually he adopts an ironical attitude towards them and his tone is one of criticism. No doubt, he is not a socially committed writer like Mulk Raj Anand or Bhabani Bhattacharya. But, on the whole, Daruwalla's imagination is basically 'Sociological', and he comes out as social critic of his age. Since he largely deals with the society of the present, not of the past, he naturally earns an occasion "to write in the realistic mode." Daruwalla's poetry is full of realistic portrayals of persons and places, and it faithfully records the happenings in our society. His socio-political-cum-cultural concerns lead him to some mythical and legendary personalities, such as Carvak, Karna and Draupadi

in Apparition in April , who by their salutary deeds serve as ' social icons' in the succeeding ages.

References

1. Michael Hulse, " *The Shadow of the Heart*", a review of *Under Orion Poetry Review*, 83 , No.1 (Spring 1993), p.13.
2. K.N. Darunwalla, " *The Ghagbra in Spate*", *Collected Poems : 1970- 2005*. New Delhi : Pwenguin Books India, 2006, pp. 78-79.
3. P.D. Chaturvedi,"ew Poetry in india", *Commonwealth quarterly*, 4 , No. 13 (March 1980), p. 116.
4. Prasenjit Mukberjee, "Relating the subjective Experience: An Approach to the Recent poetry of Keki N. Darunwalla", *Cbandrabbaga*, No. 4 (Winter 1980),p.52.
5. Ravi Nandan Sinha, *The Poetry of Keki N. Darunwalla : A Critical Study*. New Delhi : B.R. Publishing Corporation, 2002, p.6.

CONTROLLING AGGRESSION IN SPORTS

Dr. Santosh Kumar Gaur*

Abstract

The modern sport training lays greater emphasis on preparing the athletes psychologically. Lots of emphasis is being given to the psychological research dealing with different psychological variables and mental rehearsals of the training of the top level athletes. Aggression is one psychological characteristic which affects the performance of any individual. Aggression is a factor that is associated with the performance of the players. Aggression in fact is a form of behavior characterized by physical or verbal attack. It may appear appropriate and self-protective, even constructive, as in healthy self-assertiveness, or inappropriate and destructive. Aggression may be directed outward, against others, or inward, against the self, leading to self-destructive or suicidal actions. It may be driven by emotional arousal, often some form of frustration, or it may be instrumental, when it is used to secure a reward. From understanding the different types of aggression that can occur in sport, it is necessary that all coaches have an understanding of how their performers can use controlled aggression to improve performance and that they have methods that can be used to reduce hostile aggression.

Keywords : *Athlete, Aggression and Sports Performance.*

No training in the sports field is complete without reference to the psychological study and training of athletes. All other factors as like biological and sociological being equal, psychological conditioning of an athlete decidedly determines his success or failure in the competition. Kamlesh (1983) cited that in modern

* Assistant Professor, Dept. of Physical Education, J.N.M.P.G.College, Barabanki, U.P.

competitive sports, psychological preparation of an athlete or a team is as much important as technique of the different skills of the game on specific lines. The athletes and teams are prepared not only to play the game, but to win it. And for winning the games it is not only the proficiency in the skills which bring victory but more important is the preparation, the spirit and the attitude of the athletes with which they play and perform the best in the competition.

The modern sport training lays greater emphasis on preparing the athletes psychologically. Lots of emphasis is being given to the psychological research dealing with different psychological variables and mental rehearsals of the training of the top level athletes.

Performance in sports is the combined result of physical as well as mental fitness; mental fitness has relatively remained neglected in India. As asserted by Singh (1981) most of the coaches agree that the physical characteristic, skills and training of the players are extremely important but they also indicate the good mental preparation for competition, which is necessary component of success. In western countries like Russia, G.D.R., Bulgaria, Czech and also Slovakia much stress is being laid on the mental preparation of their international teams as well as on the psychological conditioning of their sportspersons. A coach has the right to help the player to find out his specific talents and factors for their fullest potential helps in developing not only the physical attributes but also his attitudinal motivation and psychological spirits.

Aggression is one psychological characteristic which affects the performance of any individual. Aggression is a factor that is associated with the performance of the players. Aggression in fact is a form of behavior characterized by physical or verbal attack. It may appear appropriate and self-protective, even constructive, as in healthy self-assertiveness, or inappropriate and destructive. Aggression may be directed outward, against others, or inward,

against the self, leading to self-destructive or suicidal actions. It may be driven by emotional arousal, often some form of frustration, or it may be instrumental, when it is used to secure a reward.

Aggression is not innate behavior but it is acquired by the individual. This point has been supported by Bredemeier (1986) who has indicated that aggression is a learned behavior. Using children in his studies, Bredemeier demonstrated that, by watching another person act aggressively and obtain desirable rewards or by learning through personal experience that such behavior yields rewards.

Aggression in an individual can be either towards some other person or against one's own self. These are termed as *intropunitive* and *intropunitive* aggression. According to Husman and Silva III (1984) aggressive behavior is non-accidental, the aggressor intends an injury, and the behavior selected for this is under his or her control. The aggressor has selected the behavior from various alternatives available in the situation including non-aggressive response.

The aggressive construct is quite complex. It depends upon individual, the situation responsible for arousal of the aggression and the capacity of the individual to express it. Thus each player will display aggression within the frame work of these individual differences. According to Butt (1987) the aggressive constructs is a complex one, that there are individual differences in the innate, potential to aggression and that the aggression can also be learned or stimulated by specific situations. When aggressive energies are expressed within the rules of a sport and channeled into skill by a mature player, then one may witness a powerful and inspiring performance. Aggression for aggression sake should not be sanctioned. It is self-defeating and debilitating to others. The outstanding sportspersons enter competition with control and not with impulse. The aggressive player will be more active, eager,

strong, highly motivated and likely to seek to vanquish any opponent.

Research has shown that men who participate in organized sports exhibit more aggressive behaviors, in both athletic and non-athletic contexts, than those who do not. These behaviors include bullying, sexual violence, and physical aggression. According to Forbes et al. (2006), Athletes also tend to hold more positive attitudes toward violence than do non-athletes. Their increased aggression and propensity toward violence is likely due, in part, to the aforementioned masculine social norms that are established on sports teams. This literature review sought to explore the ways in which men's participation in organized sports influences their engagement in violent and aggressive behaviors, as well as factors related to the variations in types of violence committed.

Types of Aggression

Hostile Aggression: Hostile aggression is described as inflicting or causing harm to another person, whether physical or psychological. It's also known as reactive aggression, and it's always accompanied by rage. The primary purpose of aggressive violence is to harm other athletes. The aim is to inflict pain and suffering. In simplistic terms, aggressive violence happens where the primary objective is to hurt or kill the enemy physically. A bowler intentionally tossing a bouncer to disrupt a batsman's attention is a fine example of aggressive provocation.

Instrumental Aggression is characterised as offensive action that is used to accomplish a non-aggressive purpose. It is also known as channelled aggression and is not accompanied by rage. In contact sports, this form of violence is common. To put it another way, instrumental violence is behaviour that is done with the intention of causing harm in order to gain wealth, praise, or victory. In the case of instrumental violence, the athlete's main aim is to injure the opponent, but the most critical goal is to win the game.

Assertive Behaviour: Assertive behaviour is a form of aggression/aggression that is distinct from aggressive behaviour. This is characterised as behaviour that includes the legal use of physical or verbal force in order to accomplish a goal. In cricket, for example, sledging is used to inflict psychological damage to the batsman. To be assertive, an action must be goal-oriented, with no real intent to injure, and the use of legal force without violating any laws.

Causes of Aggression

Is aggression nature or nurture? As like personality theories suggest that aggression is a natural drive and during sporting activity the aggression can be channeled appropriately. Other theorists of social learning suggest that we copy others in the way we act offering both good and bad role models in society. More recent theories combine the two, suggesting that it is frustration that triggers anger and aggression. Performers could become frustrated for a number of reasons to include not being on form, frustration with the officials for making incorrect decisions or frustrated about the lack of team work being displayed by others. In sport however aggression is more common when players are losing or individuals are not competing at their best.

Controlling aggression

From understanding the different types of aggression that can occur in sport, it is necessary that all coaches have an understanding of how their performers can use controlled aggression to improve performance and that they have methods that can be used to reduce hostile aggression. Here are some ways in which aggression can be controlled:

1. Punishment to performers that are displaying hostile or instrumental aggression within sport e.g. fines, bans, red cards.

2. Channel aggression in to the performance, focusing on the task.
3. Coach/peers to provide praise for non-aggressive behaviour.
4. Remove self from aggressive situations, e.g. walking away, being subbed
5. Make sure performers are aware of code of conduct set by Governing Bodies and enforced on performers on a regular basis to ensure performers follow it promoting good sportsmanship.
6. Coaches to teach their team respect towards others e.g. opposition, officials, coaches, team mates, fans.
7. Do not show negative aggressive acts on the television; only show the positive role models.
8. Coaches need to provide performers with anger management techniques to use when faced with a situation in which they may become hostile.

References

1. Bredemeier, Brinda Jo and Shields, David L. (1986). "The Relationship of Sport Involvement with Children's Moral Reasoning and Aggression Tendencies," *Journal of Sport Psychology* 8:4:304.
2. Butt, *Psychology of Sport*, pp 20-25.
3. Forbes, G. B., Adams-Curtis, L. E., Pakalka, A. H., & White, K. B. (2006). Dating aggression, sexual coercion, and aggression-supporting attitudes among college men as a function of participation in aggressive high school sports. *Violence Against Women*, 12(5), 441-455. doi: 10.1177/1077801206288126.
4. Husman F. Burris and John M. Silva III, *Aggression in Sport: Definitional and Theoretical Considerations*, in John M. Silva III and Robert S. Winberg eds. *Psychological Foundations of Sports*. Champaign: Human Kinetic Publishers Inc...1984. pp. 247-248.
5. Kamlesh, M. L. (1983). *Psychology of Physical Education and Sports* New Delhi: Metropolitan Books Company Pvt. Ltd. P. 17.
6. Singh, Robert N. (1981). *Miths and Truth in Sports Psychology* New York : Harper and Row Publishers. P. 4.
7. https://learnzone.loucoll.ac.uk/sportres/CourseGenie/Sport/2010spec/AASELevel2/L2PsychologyForSportsPerformance/L2PsychologyForSportsPerformance_04Mod/L2PsychologyForSportsPerformance_04Mod_05.htm

MODERN SCIENCE AND SPIRITUAL TRADITIONS

Dr. Anil Kumar Srivastava*

Science may be defined as the spirit of enquiry, the quest for truth, the search for the how and why of things. It prompts man to question everything and acquire systematic and formulated knowledge-moral, political and national. It does not accept traditional beliefs, superstitions or anything else on trust. Science does not take things for granted. It is common sense at its best—that is, fully accurate in observation and merciless to any fallacy in logic. Every important advance in science has resulted from a new audacity of imagination. As Goethe said, science and art belong to whole world, and before them vanish the barriers of nationality.

Most of India's spiritual traditions do not quite fit into the concepts of modern science. Spiritualism relates to religious thought, with the emphasis on the individual. In its cheapest interpretation, spiritualism has enabled clever people to exploit over-credulous people who seek relief or escape from mental and psychological tensions. Some psychic phenomena, however, help and spiritualism does provide relief to people in distress.

The commonly accepted meaning of spiritualism points to a philosophical doctrine that spirit exists as distinct from matter. In fact, spirit is deemed to be the only reality. Religion and spiritualism signify a particular set of beliefs, a creed and certain rituals, while modern science indicates a particular discipline. Over the centuries both science and religion have existed with the human race in one form or the another. It is wrong to say, therefore, that before Lord Buddha and Lord Krishna, Jesus Christ or Prophet

* *Associate Professor, Department of Sociology, Jawaharlal Nebru Memorial Post-Graduate College, Barabanki.*

Mohammed, there was no religion; it is equally wrong to say that before Copernicus, Galileo and Newton there was no Science.

Throughout history, India has been described as a leading centre of the Orient and as a country where religion and spiritualism predominate as against the materialistic civilization of the West-the Occident. Ours has been a land of saints and sages who set spiritual traditions which were observed by the masses and even the upper classes-until recently.

There is a common impression that science and spirituality are mutually contradictory. The scientific spirit and temper imply intellectual questioning and a reluctance to accept anything straightaway; it insists on scrutiny and criticism. The scientific method is empirical and calls for definite, material evidence together with verifiable data. But the religious outlook and spiritualism are characterised by authoritarianism. While scientific conclusions are often provisional; spiritual beliefs and religious commandments are absolute and final.

Religion generally becomes rigid, closed and confined to a world whose frontiers were outlined in scriptures centuries ago by sages and other enlightened men. The tool of science is experiment and reasoning, while the basis of spiritualism is infallibility of the scriptures. Spiritualism envisages the mysterious and the unknown; it often draws conclusions from scraps of paper and odd evidence. Science, on the other hand, seeks to lift the veil of secrecy from everything that it investigates.

Science stresses the vital importance of matter, while religion and spiritualism lay emphasis on the unique majesty of the soul. Spiritualism directs us to be meek, pious and humble; science has no link with meekness, humility or charity. Knowledge of the ultimate truth is, however, a common quest. As a man grows to maturity, he is not entirely engrossed in, or satisfied with, the external and objective world. He seeks also some inner meaning, some psychological satisfaction from his daily mundane, earthly

existence. The same holds good for nations and civilisations as they grow and become mature. Man is generally described as a social animal; he likes to live with other people, unless he happens to be abnormal or a saint. But man may also be described as a religious animal; he does not live by bread alone. Thus there are parallel streams of an external life and an internal life. Conflicts arise whenever the two streams diverge; on the other hand, there is equilibrium and stability when they run close to each other in a harmonious manner.

There is a traditional belief in many regions that human beings not only continue to live after death but also are able to communicate with the living and to make themselves seen. Although this belief is an old one, the history of modern spiritualism goes back only to 1848. In that year the home of J.D. Fox, in an area near New York, was the scene of a series of mysterious "rappings" and other noises which the Fox family believed were caused by a supernatural power. Two daughters of this family founded the modern spiritualist movement. They became what are now known as spiritualist mediums. One group of investigators of para psychology believe that spiritualism contains some scientific truth which must at least be made a part of the main body of science.

India's spiritual traditions postulate a deep, unshakable faith in gods and angels, but this faith has no, scientific or universally accepted foundations. Modern science, strictly speaking, tends to regard religion as a deception or even a fiction invented by vested interests to oppress and exploit the- ignorant masses. All talk of the- Devil and demons also appear to modern scientists as the product of man's wild imagination.

It would be relevant to recall in this connection the comments made by Freud on religion. According to him, religion is an attempt to get control over the sensory world in which we are placed, by means of the wish- world which we have developed inside us as a result of biological and psychological necessities. But spiritual

traditions and doctrines bear the stamp of the ancient times in which they were set. The time has been called the "childhood days" of the human race. It created myths, superstitions, dogmas, creeds and metaphysical theology. The modern scientific era may be said to mark the age of maturity.

Another manifestation of the spiritual traditions is the massive Kumbh Mela, the latest of the series being the "Maha Kumbh" which often resulted in a ghastly tragedy in the past when many pilgrims were killed or injured. Our spiritual traditions require all truly religious people to go to Hardwar, Allahabad and other holy places for a dip in the Ganges on a particular day at an auspicious hour. Modern Science offers no rational explanation for such huge gatherings at which several people suffer loss of life and limb, not to speak of the indescribable inconvenience suffered by lakhs of pilgrims who travel long distances to reach a sacred place or river.

Mass gatherings cause a heavy, unbearable strain on the administrative machinery: for months all-out efforts are made at heavy expense, to provide the maximum possible facilities for pilgrims. Hundreds of officials and thousands of policemen are taken away from their normal functions and put on "Khumbh Mela" duty. Modern Science deplors such Melas which it describes as the result of unwarranted and indefensible superstitions. Many human lives can be saved and considerable economy effected if such huge Melas are not held.

Scientific management would demand that pilgrims and pilgrimages should be spread out over a period of time, but spiritual superstitions will not permit induction of science into religious matters. It may be noted that most enlightened, well educated people avoid such "Melas" and save themselves from the inconvenience and risks involved in observing age-old religious practices such as compulsory bathing in the Ganges on a certain day to wash off our sins and purify our souls. Modern science does not countenance such blind faith.

True science and true religion are not hostile or contradictory to each other. Religion and spiritual traditions have the same goal—the quest for truth and enrichment of human life. Modern science seeks the conquest of Nature as outwardly manifested, and the various religions seek to control the inner nature of human beings, their passions and their wild instincts. Both science and spiritualism tend to develop and conserve the resources available to man.

Any religion that sanctions persecution and oppression of the down-trodden is falsely interpreted by clever exploiters. Any science that regards religion and spiritualism as frauds is totally misleading and based on foundations of sand. Science only deplores dogmas, not faith in the Almighty. Those who assert that science and spiritualism are incompatible do not fully understand either religion or science.

Einstein, the great modern Scientist, made a significant observation which puts things in the right perspective. "My religion consists", he said, "of a humble admiration of the illimitable superior spirit who reveals himself in the slight details we are unable to perceive with our frail and feeble minds. That deeply emotional conviction of the presence of a superior reasoning power, which is revealed in the incomprehensible Universe, forms my idea of God". There need be no doubt that the spread of modern science will gradually help to eliminate unwarranted, absolute and potentially harmful spiritual traditions while leaving true religion and well founded beliefs intact.

Humanity needs both science and spiritualism for genuine and lasting progress. Science is not against reason and devotion to truth; rather it encourages it. A scientific faith in God and man is what would help us in following the path of progress.

As science progresses and spreads, separatist and creedal religion and such spiritual traditions as are difficult to observe under the stresses of modern living may be gradually pushed into

the background. As Jawaharlal Nehru said, the world now needs less ritualistic religion but more spirituality. Good results may be achieved if scientific education is supplemented with instruction and training in humanities.

Fine arts and spirituality can together save us from grossness and blind beliefs. In fact, true and genuine spirituality can never be in danger even in the age of modern science. Oppenheimer and his co-workers in atomic research were reported to be regular readers of the Bhagwad Gita. Schopenhauer, the German philosopher, said that the Upanishads had been the solace of his life.

What is being abolished in many countries is religious education of the old, outdated pattern. Education of this type advocated orthodoxy, dogmatism, fanaticism and ritualism. It is only in countries such as Iran and Pakistan that fundamentalism and reactionary dogmas preached by the "mullahs" are being encouraged for political ends.

References

1. Freud, Sigmund : *The Future of an Illusion*, W.W. Norton & Company, 1927
2. Jammer, Max : *Einstein and Religion: Physics and Theology*, Princeton, N.J., Princeton University Press, 1995.
3. Nehru, Jawaharlal : *Discovery of India*, Signet Press, Calcutta, 1946. Jawaharlal Nehru Memorial Fund.
4. Oppenheimer, J.R. : *Science and the Common Understanding*, New York, 1954
5. Schopenhauer, A. : *The Horrors and Absurdities of Religion*, Penguin Classics, 2009.
6. Stuart, Nancy Rubin.: *The Reluctant Spiritualist: The life of Maggie Fox*,
6. Upanishads.
7. Bhagwad Gita.